नभग

डॉ. विष्णुदत्त राकेश





नभग

''भागवतपुराण में यह कथा मनु-पौत्र (नभग के पुत्र) नाभाग से संबद्ध मिलती है तो शिवपुराण में यह कथा मनु-पुत्र नभग से जोड़ी गई है। मैंने शिवपुराण तथा वैदिक संदर्भों को ध्यान में रखते हुए नभग को ही इस घटना के मूल में खड़ा किया है, नाभाग को नहीं। नभग के चरित्र के निर्माण में मुझे भागवत के 'कविर्भवति मंत्रज्ञो' वाक्य से प्रेरणा मिली और मैंने नभग को प्रारंभ से ही कवि के रूप में चित्रित कर उसकी क्रांतिकारिता को उजागर किया। 'कवयः क्रान्त दर्शिनः' की सार्थकता इस कथा का प्राण है। इक्ष्वाकु तथा अन्य भाइयों द्वारा नभग को राज्याधिकार से वंचित करने के पीछे भी कोई कारण होना चाहिए। मैंने इसके लिए वर्णव्यवस्था, नारी-शिक्षा, शिक्षा का समानाधिकार तथा राजप्रभाव से मुक्त शिक्षा के बिंदुओं को उठाया है। नभग इसके कट्टर समर्थक हैं तथा इक्ष्वाकु आदि परंपरा के अंधसमर्थक हैं। फलतः दोनों में मतभेद होता है और कट्टर द्विज संघों के कारण नभग को राज्याधिकार से वंचित कर दिया जाता है। वह वर्णव्यवस्था को जन्म के आधार पर स्वीकार न कर गुण-कर्म के आधार पर स्वीकार करते हैं। पुरानी तथा नई विचारधारा के संघर्ष की परिणति है, नभग का जीवन। वह गुरुकुल की स्थापना कर जर्जर रूढ़ियों को तोड़ते हैं। समान शिक्षा, समान भोजन, समान परिधान तथा ज्ञान-विज्ञान से समन्वित चरित्राधारित क्षेत्रकार्य मूलक शिक्षाप्रणाली का सूत्रपात कर वह नई शिक्षाप्रणाली को जन्म देते हैं। इस प्रकार नभग या नाभानेदिष्ठ को सहृदय, क्रांतिकारी, समतावादी, न्यायनिष्ठ तथा जर्जर प्रथाओं का विध्वंसक कवि मानकर मैंने आधुनिक बोध संकलित एक सर्वथा नए संदर्भ की सृष्टि की है। इस युग में महर्षि दयानंद सरस्वती तथा स्वामी श्रद्धानंद सरस्वती ने शिक्षा के क्षेत्र में ऐसी ही क्रांति उपस्थित की थी। इस काव्य के पाठकों को यदि नभग के व्यक्तित्व में स्वामी श्रद्धानंद प्रतिबिंबित होते हुए दिखाई दें तो उन्हें आश्चर्य नहीं करना चाहिए। श्रद्धा के पुत्र नभग वास्तव में श्रद्धानंद ही थे। मेरे लिए यह और भी परितोष का कारण है।''

—भूमिका से

नभग

[आधुनिक युगबोध से संवलित
वैदिक आख्यान काव्य]



नभग



डॉ. विष्णुदत्त राकेश





राधाकृष्ण

ISBN : 81-7119-416-8

नभग (वैदिक आख्यान काव्य)

प्रथम संस्करण : 1998

मूल्य : 95 रुपये

प्रकाशक
राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड
2/38, अंसारी मार्ग, दरियागंज
नई दिल्ली-110 002

मुद्रक
त्रिवेणी ऑफसेट
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110 032

NABHAG by Dr. Vishnu Dutt Rakesh





आयुर्वेद के प्रकाण्ड विद्वान्
आचार्य पंडित शिवसहाय चतुर्वेदी के पट्ट शिष्य
गुरुकुल कांगड़ी आयुर्वेद महाविद्यालय के द्रव्यगुण विभागाध्यक्ष
आयुर्वेदीय वनस्पतियों के अनुसंधायक तथा व्याख्याता
गायत्री के पुरश्चरणकर्त्ता साधक, कर्मयोगी तथा तत्त्ववेत्ता
पीयूषपाणिवैद्य
स्वर्गीय पंडित रामनाथ जी पाण्डेय, डी.एस.सी. (आयुर्वेद)
की पुनीत स्मृति को
सादर सश्रद्ध समर्पित

भूमिका

विश्ववारा भारतीय संस्कृति के उदयकाल में श्राद्धदेव मनु के दस पुत्रों ने आदर्श मानव आचार संहिता का पालन करते हुए वंश-विस्तार किया। उनके बड़े पुत्र इक्ष्वाकु की वंश-परंपरा में ही मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम का प्रादुर्भाव हुआ। सत्य, दान, दया, तप, स्वाध्याय आदि धर्मस्कंधों का पालन कर उन्होंने अपना जीवन महान बनाया। मनु-पुत्रों में इक्ष्वाकु तथा शर्याति के नाम प्रसिद्ध हैं। शेष भाइयों में पृषध्र गोसेवा कार्य में प्रमाद और असावधानी बरतने के कारण गुरुदेव वशिष्ठ के शाप से दंडित होकर वन चले गए। कवि बचपन से ही विरक्त भाव के थे अतः उन्होंने राज्य-पद स्वीकार नहीं किया। प्रतिभाशाली नभग को वेदाध्ययन तथा अध्यापन का ऐसा चस्का लगा कि वह आचार्य कुल छोड़कर समय से घर लौटे ही नहीं। बँटवारा करते समय शेष भाई उन्हें भूल ही गए। महाराज मनु के संन्यास ग्रहण करने पर उनका राज्य दस भाइयों में न बँटकर शेष सात भाइयों में ही विभाजित किया गया। नभग जब वेदाध्ययन के बाद लौटे और उन्होंने अपना हिस्सा माँगा तो अर्थलोलुप भाइयों ने उन्हें टका-सा जवाब दिया तथा बूढ़े माता-पिता की सेवा का परामर्श देकर टरका दिया। निदान बूढ़े पिता मनु और बूढ़ी माता श्रद्धा को अपना भाग समझकर उन्होंने संतोष कर लिया। शेष भाई बूढ़े माता-पिता को अनुपयोगी समझकर उपेक्षा के योग्य मान बैठे थे। नभग कवि थे, भावुक और सहृदय थे, स्वाध्यायशील, सत्यनिष्ठ, दयालु तथा सेवाव्रती थे। उन्होंने सर्वस्वत्यागी माता-पिता की उस असहाय अवस्था में अकिंचन और साधनहीन होते हुए भी भरपूर सेवा की। श्रीमद्भागवत पुराणकार लिखते हैं :

नाभागो नभगापत्यं यं ततं भ्रातरः कविम्
यविष्ठं व्यभजन् दायं ब्रह्मचारिणमागतम्।
भ्रातरोऽभाङ्क्त किं मह्यं भजाम पितरं तव। 9.4.1.2

नभग का जीवन आर्थिक कठिनाइयों में बीतने लगा। वह भूखे-प्यासे रहकर स्वाध्याय तथा सेवाकार्य करते रहे। एक दिन वृद्ध पिता ने पुत्र की दयनीय दशा देखकर परामर्श दिया कि वह निकट ही संपन्न हो रहे अंगिरागोत्री ब्राह्मणों के यज्ञ में जाएँ तथा उन्हें वैश्वदेव संबंधी दो सूक्त सुनाकर प्रसन्न करें। अंगिरागोत्री ब्राह्मण स्वयं मंत्रकार हैं

अतः मंत्रकार ऋषियों का आदर करते हैं तथा मंत्रकार ऋषियों को समय-समय पर सम्मानित तथा पुरस्कृत करते रहते हैं। नभग ने यह परामर्श स्वीकार कर यज्ञशाला में स्वरचित सूक्त सुनाए। सर्वथा नए सूक्त सुनकर आंगिरस प्रसन्न हुए। यज्ञान्त पर स्वर्ग जाते हुए उन्होंने नभग को धनधान्य तथा गाएँ पुरस्कार रूप में प्रदान कीं। नभग की बाछें खिल गईं। वह प्रमुदित मन लौट रहे थे कि मार्ग में उन्हें भगवान् रुद्र मिल गए। उन्होंने उस धन पर अपना अधिकार बताया। नभग की प्रसन्नता-लता पर तुषारापात हो गया। उन्होंने धैर्य धारण कर उस धन को अपना पुरस्कार बताया तथा रुद्र को परावर्त करना चाहा पर एक हठीले रुद्रदेव थे, टस से मस न हुए। नभग ने इसके लिए रुद्रदेव से प्रमाण देने को कहा। रुद्रदेव ने उत्तर दिया—'हम तुम्हारे पिताश्री को इस वाद का मध्यस्थ बनाते हैं, उन्हीं से पूछो—यज्ञशेष पर किसका अधिकार है ?'

नभग पिता के पास गए और जाकर प्रश्न किया। पिता के लिए यह विकट परीक्षा की घड़ी थी। एक ओर सत्य-न्याय के निर्णय का पक्ष और दूसरी ओर भूखे-प्यासे निर्धन कवि पुत्र के धन चले जाने का दुःख। इस द्वंद्व ने वृद्ध मनु को भीतर तक झकझोर डाला। मनु ने स्वयं को सँभाला और बिना विचलित हुए निर्णय दिया कि यज्ञशेष पर रुद्रदेव का अधिकार है, यह बात देवताओं तथा ऋषि-मुनियों ने दक्ष-यज्ञ के अवसर पर तय कर दी थी। नभग ने पिता की आज्ञा शिरोधार्य की और रुद्रदेव को यह निर्णय जाकर सुना दिया। पिता और पुत्र की सत्यवादिता तथा निर्लोभ धर्म-निष्ठा से रुद्रदेव प्रसन्न हुए। उन्होंने वह सारा धन नभग को आशीर्वादस्वरूप दे दिया। सत्य धर्म का वास्तविक स्कंध है। अतः सत्यवादी को शास्त्रों ने ब्रह्मविद्या का उपयुक्त अधिकारी माना है। रुद्रदेव ने इसीलिए नभग को दुर्लभ ब्रह्मतत्त्व का उपदेश भी दिया। भागवत में लिखा है :

यत् ते पिता वदद् धर्मं, त्वं च सत्यं प्रभाषसे,
ददामि ते मन्त्रदृशे, ज्ञानं ब्रह्म सनातनम्,
गृहाण द्रविणं दत्तं, मत्सत्रेपरिशेषितम्। 9.4.10./11

नभग ने रुद्रदेव को प्रणाम किया तथा उसे अमोघ मंत्रकार होने का वरदान देकर रुद्रदेव अंतर्धान हो गए। इस कथा का समापन करते हुए भागवतकार फलश्रुति लिखते हैं कि इस घटना का प्रातः-सायं पाठ-स्मरण करने वाला कवि बनता है :

कविर्भवति मन्त्रज्ञो गतिं चैव तथाऽऽत्मनः।

इस प्रकार पौराणिक वांगमय में किसी कवि की यह पहली यशोगाथा है, जिसका संबंध वैदिक युग से रहा है।

नभग की यह कथा ऋग्वेद के दशम मंडल तथा ऐतरेय ब्राह्मण में मिलती है। वहाँ नभग का नाम नाभानेदिष्ठ तथा रुद्र का नाम कृष्णशवा बताया गया है। नाभानेदिष्ठ

मंत्रकार हैं। उनके द्वारा रचित इकसठवें सूक्त में सत्ताईस तथा बासठवें सूक्त में ग्यारह मंत्र संकलित हैं। सायणाचार्य ने सूक्त के प्रथम मंत्र 'इदमित्था रौद्रं गूर्तवचा ब्रह्मकृत्वा शच्यामन्तराजौ' की व्याख्या करते हुए यह कथा दी है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि पुराणों का नभग तथा वेद का नाभानेदिष्ठ एक ही व्यक्ति है जो मनुपुत्र होने के कारण राजर्षि तथा मंत्रकर्त्ता होने के कारण ब्रह्मर्षि पद का अधिकारी बना है। उसके मंत्रद्रष्टा होने का प्रमाण यह भी है कि यदु तथा तुर्वसु जनों के राष्ट्राध्यक्ष उसे सम्मान के लिए गाएँ भेंट करते हैं। नभग या नाभानेदिष्ठ मानव ऋषियों में अग्रणी हैं फिर तो शर्याति, नहुष, चक्षु, सोम, बुध, पुरुरवा, ऐल आदि अनेक मंत्रकार मानव ऋषि छान्दस फलक पर छाते हुए दिखाई पड़ते हैं। ऋग्वेद के दशम मंडल के बासठवें सूक्त का दसवाँ मंत्र यदु तथा तुर्वसु द्वारा प्रदत्त सम्मान का संकेत देता है :

उतदासा परिविषे स्मद्दिष्टी गो परीणसा
यदुस्तुर्वश्च मा महे।

मैं यह मानता हूँ कि पुराने तथा नए ऋषियों की परंपरा अनवरत तथा अबाध गति से चलती रहती है। शाश्वत जीवन-मूल्य युग संदर्भ में दमककर निकलें, सृजनेच्छा की यही कालजयी परिणति है और इसीलिए कविता कभी नहीं मरती।

भागवतपुराण में यह कथा मनु-पौत्र (नभग के पुत्र) नाभाग से संबद्ध मिलती है तो शिवपुराण में यह कथा मनु-पुत्र नभग से जोड़ी गई है। मैंने शिवपुराण तथा वैदिक संदर्भों को ध्यान में रखते हुए नभग को ही इस घटना के मूल में खड़ा किया है, नाभाग को नहीं। नभग के चरित्र के निर्माण में मुझे भागवत के 'कविर्भवति मंत्रज्ञो' वाक्य से प्रेरणा मिली और मैंने नभग को प्रारंभ से ही कवि के रूप में चित्रित कर उसकी क्रांतिकारिता को उजागर किया। 'कवयः क्रान्त दर्शिनः' की सार्थकता इस कथा का प्राण है। इक्ष्वाकु तथा अन्य भाइयों द्वारा नभग को राज्याधिकार से वंचित करने के पीछे भी कोई कारण होना चाहिए। मैंने इसके लिए वर्णव्यवस्था, नारी-शिक्षा, शिक्षा का समानाधिकार तथा राजप्रभाव से मुक्त शिक्षा के बिंदुओं को उठाया है। नभग इसके कट्टर समर्थक हैं तथा इक्ष्वाकु आदि परंपरा के अंधसमर्थक हैं। फलतः दोनों में मतभेद होता है और कट्टर द्विज संघों के कारण नभग को राज्याधिकार से वंचित कर दिया जाता है। वह वर्णव्यवस्था को जन्म के आधार पर स्वीकार न कर गुण-कर्म के आधार पर स्वीकार करते हैं। पुरानी तथा नई विचारधारा के संघर्ष की परिणति है, नभग का जीवन। वह गुरुकुल की स्थापना कर जर्जर रूढ़ियों को तोड़ते हैं। समान शिक्षा, समान भोजन, समान परिधान तथा ज्ञान-विज्ञान से समन्वित चरित्राधारित क्षेत्रकार्य मूलक शिक्षाप्रणाली का सूत्रपात कर वह नई शिक्षाप्रणाली को जन्म देते हैं। इस प्रकार नभग या नाभानेदिष्ठ को सहृदय, क्रांतिकारी, समतावादी, न्यायनिष्ठ तथा जर्जर प्रथाओं का विध्वंसक कवि मानकर मैंने आधुनिक बोध संकलित एक सर्वथा नए संदर्भ की सृष्टि की है। इस युग में महर्षि दयानंद सरस्वती तथा स्वामी श्रद्धानंद

सरस्वती ने शिक्षा के क्षेत्र में ऐसी ही क्रांति उपस्थित की थी। इस काव्य के पाठकों को यदि नभग के व्यक्तित्व में स्वामी श्रद्धानंद प्रतिबिंबित होते हुए दिखाई दें तो उन्हें आश्चर्य नहीं करना चाहिए। श्रद्धा के पुत्र नभग वास्तव में श्रद्धानंद ही थे। मेरे लिए यह और भी परितोष का कारण है।

पुराणोक्त आंगिरस कुल के ऋषियों के यज्ञ को मैंने कविस्पर्धा आयोजन के रूप में सोद्देश्य प्रस्तुत किया है। मेरी इस कल्पना का आधार भी अंगिरा का मंत्रद्रष्टा होना ही है। उनके कुल के ऋषियों में अभिवर्त, प्रचेता, शिशु, सुकक्ष तथा संवर्त प्रसिद्ध हैं और इस काव्य में वे सब ऋषिका घोषा के साथ उपस्थित हैं। घोषा द्वारा गोष्ठी की अध्यक्षता कराए जाने की कल्पना के मूल में भी 'नारी वेदाधिकार से वंचित नहीं हो सकती' की धारणा को स्थापित करना सुदृढ़ लक्ष्य रहा है। ऋग्वेद के दशम मंडल के अश्विनौ संज्ञक सूक्त उसी ने लिखे हैं। इन सूक्तों के मंत्रों की कुल संख्या अट्ठाईस है। इस प्रकरण से 'स्त्रीशूद्रौनाधीयताम्' की धारणा पर भी करारी चोट होती है।

इसके अतिरिक्त धृष्ट के चरित्र में परिवर्तन कराना भी मुझे अभीष्ट रहा है। वह वर्णव्यवस्था का कट्टरपक्ष छोड़कर उदारतावादी बनता है तथा स्वयं नभग के सामने प्रायश्चित कर क्षत्रियत्व के स्थान पर ब्राह्मणत्व स्वीकार करता है। वह नभग के उत्तराधिकारी के चयन के प्रसंग में नभग के इस प्रस्ताव का हार्दिक समर्थन करता है कि गुरुकुल का आचार्य द्विजेतर विद्वान् होना चाहिए और ऐसा ही होता भी है। इस क्रांतिकारी परिवर्तन के बाद नभग स्वेच्छया संन्यास लेकर स्वयं को परिदृश्य से अलग कर लेते हैं। इन समस्त प्रसंगों में आधुनिक राजनीतिक जीवन की कुछ धूमिल तथा कुछ उज्ज्वल घटनाएँ भी गुंफित हो गई हैं, उन सबके औचित्य तथा सार्थकता का प्रश्न मैं पाठकों पर छोड़कर मौन धारण करना चाहता हूँ। इससे अधिक अपने काव्य पर किसी कवि को और कुछ कहना भी नहीं चाहिए। हाँ, यह संतोष का विषय है कि 'नभग' में मुझे अपनी संपूर्ण विचारधारा को अंतर्हित करने का अवसर मिला है।

मैं दुविधा में हूँ कि क्या आचार्य नभग आज की व्यावसायिक तथा उदात्त जीवन की मूल्यहीन शिक्षा के अंधकूप से अपने विद्यार्थियों तथा आचार्यों को निकालकर आर्ष-प्रणाली की सार्थकता प्रमाणित कर सकेगा ?

इस अवसर पर संस्कृत विद्वान् तथा अपने स्नेहभाजन श्री राजेन्द्रनाथ पांडेय, बिक्रीकर आयुक्त, को विशेष धन्यवाद, जो इस काव्य को प्रकाशित देखने के लिए समुत्सुक हैं। डॉ. अपर्णापालीवाल ने पाठकों की सुविधा के लिए कथासार संक्षेप तथा अभिधान लिखकर दिया, उसे भूरिशः आशीर्वाद।

–विष्णुदत्त राकेश

प्रथम सर्ग

मरकत मण्डित यज्ञ कुण्ड में,
किया उषा ने अग्न्याधान।
तम की समिधा से तारागण,
उड़ने लगे स्फुलिंग समान ॥ 1 ॥

मंत्र पाठ करने को उद्यत,
मृदुल पल्लवों पर आसीन।
द्विज गण से द्विज कलरव करते,
ध्यानावस्थित धर्म धुरीण ॥ 2 ॥

दीप्त शिखामाला सा फैला,
नील अरुण पीताभ प्रकाश।
कमलनाल के स्रुक से मानो,
गिरा टपक कर सरस सुहास ॥ 3 ॥

घृत संसिक्त अर्चियाँ नभ में,
रचने लगीं अदृष्ट भविष्य।
धूम्रयान से गया स्वर्ग तक,
देव निमित्त प्रदत्त हविष्य ॥ 4 ॥

जगा रहे थे दिक्पालों को,
ताम्रचूड़ गाकर उद्गीथ।
प्रभा पुजारिन लगी लीपने,
दिशा देवियों की दस पीठ ॥ 5 ॥

नभ के सम्पुट में तारों के,
दीपों का करके बलिदान।
किया तिमिर के कापालिक ने,
सोम चषक के साथ प्रयाण ॥ 6 ॥

सूर्य गगन के खर निषंग से,
खींच तरल किरणों के तीर।
क्षितिजश्येन का वक्ष चीरकर,
बहा चुका था रक्त अबीर ॥ 7 ॥

गोशाला के गोमय रंजित,
गन्धद्वार से सटे अलिन्द।
बटुक गणों से मुखरित जैसे,
अनुगुंजित हो रहे मिलिन्द ॥ 8 ॥

ऋषि वशिष्ठ का विद्या मण्डप,
साम स्वरों से था भरपूर।
होड़ लगाने को उद्यत थे,
जिनसे शुक सारिका मयूर ॥ 9 ॥

विद्याधीत मनस्वी स्नातक,
यज्ञवेदिका के चहुँ ओर।
आहुति दे दीक्षान्त होम की,
बैठे थे हो भाव विभोर ॥ 10 ॥

विद्याव्रत स्नातक उनमें थे,
मनु के पुत्र नभग सुकुमार।
शस्त्र-शास्त्र के दुर्लभ संगम,
ब्राह्मक्षात्र बल के आगार ॥ 11 ॥

राज्य आहरण अपर स्वत्व का,
सत्ता पर-पीड़न की भूख।
वैभव सुख निर्बल का शोषण,
करता जो जगती को टूक ॥ 12 ॥

यही सोचकर इस नृपसुत ने,
त्याग दिया सत्ता का मोह।
उसके विप्रोचित अन्तस् में,
उमड़े प्रेम, दया, अद्रोह ॥ 13 ॥

पूछा—क्या है जाति जन्मना,
या गुण कर्मों के आधीन ?
क्या यह अनुचित नहीं बताना,
बिना गुणों के उत्तम-हीन ॥ 14 ॥

ऋषि ने कहा—वर्ण शारीरिक,
बौद्धिक क्षमता के प्रतिरूप।
गुण कर्माश्रित वर्णव्यवस्था,
है ऋषियों की देन अनूप ॥ 15 ॥

बौद्धिक बल द्विजत्व का सूचक,
भौतिक बल है क्षात्र प्रतीक।
धन बल वैश्यवृत्ति का पोषक,
श्रम बल शूद्र धर्म निर्भीक ॥ 16 ॥

चारों वर्ण समान रहे हैं,
छोटा बड़ा न कोई एक।
चारों अपने गुण-विवेक से,
करते धरती का अभिषेक ॥ 17 ॥

ज्ञान, शौर्य, धन, शिल्प कलाएँ,
देते खोल प्रगति के द्वार।
तीन वर्ण यदि शिखर कलश तो,
चौथा पूजित बन्दनवार ॥ 18 ॥

किन्तु स्वार्थवश जो करते हैं,
मनुज-मनुज में गहरा भेद।
वे मानवता के हन्ता हैं,
वे हैं भूमण्डल के खेद ॥ 19 ॥

मेरे लिए मनुज की क्षमता,
प्रतिभा, श्रम हैं सदा अभीष्ट।
पर इसके विपरीत सोच से,
जनसमाज का हुआ अनिष्ट ॥ 20 ॥

ऋषिकुल में आचार्य विज्ञ जन,
शिक्षा हो जाने पर पूर्ण।
परख छात्र के गुण विशेष को,
आवंटित करते थे वर्ण ॥ 21 ॥

अतः नभग पूरा स्वतंत्र है,
तजने को क्षत्रिय कुल धर्म।
यजन, पठन-पाठन, कृति सर्जन,
होंगे इसके विहित सुकर्म ॥ 22 ॥

तन से करके जग की सेवा,
मेधा से कर ग्रन्थ प्रणीत।
आत्मतेज का नित विकास कर,
पाए ऋषि-पद परम पुनीत ॥ 23 ॥

तन की ऊर्जा ब्रह्म तेज का,
होती है पहला सोपान।
आत्मतेज का नित संचय कर,
होता है द्विज महिमावान ॥ 24 ॥

यज्ञ भावना का प्रतीक वह,
समिधाओं का चिर प्रतिमान।
उसकी यशोकथा कहता है,
शिखर सिंधु तट तक पवमान ॥ 25 ॥

भौतिक सुख पहली समिधा है,
बौद्धिक सुख अविकार द्वितीय।
आत्मानन्द तीसरी समिधा,
तीन लोक से भी स्पृहणीय ॥ 26 ॥

द्वन्द्व सहन कर प्रतिपल तपना,
संयम की ज्वाला में नित्य।
फिर अखण्ड कौमार्य धर्म धर,
बनता है वह अपरादित्य ॥ 27 ॥

यह निश्चय कर राजपुत्र ने,
रख वेदी पर तीर कमान।
सहज भाव से किया विसर्जित,
राजवंश का जड़ अभिमान ॥ 28 ॥

वहीं समावर्तन-वेदी पर,
गुरु से पाकर श्रेष्ठ द्विजत्व।
त्याग दिया राजन्य भाव को,
हो अधिकार तृषा से मुक्त ॥ 29 ॥

जिस शिक्षाशाला के स्नातक,
थे वैवस्वत मनु से आर्य।
उत्कंठित हो उसी केंद्र के,
नभग बने नूतन आचार्य ॥ 30 ॥

शिक्षा अनुपम द्वार मुक्ति का,
शिक्षा संस्कृति का आलोक।
मानवता का नव विधान रच,
हरती है युग-युग का शोक ॥ 31 ॥

शिक्षा अविचल रत्नदीप है,
कर अज्ञान तिमिर का नाश।
अनुभव के पृष्ठों पर लिखती,
अमिट सभ्यता का इतिहास ॥ 32 ॥

सबके लिए सुलभ हो शिक्षा,
सबको मिले वेद का ज्ञान।
वर्ण-भेद के बिना सभी जन,
पढ़ें वेद-वेदांग समान ॥ 33 ॥

ब्रह्मचर्य, तप, त्याग, सत्य, श्रम,
शिक्षा के हों दृढ़ आधार।
कृषि वाणिज्य शिल्प उन्मुख हो,
करे ज्ञान-विज्ञान प्रसार ॥ 34 ॥

द्विज पुत्रों में और अन्य में,
शिक्षा का रहता है भेद।
शिक्षाहीन द्विजेतर सुत हैं,
मेरे लिए यही है खेद ॥ 35 ॥

बिना किसी वैषम्य, भेद के,
आश्रम में सब रहें समान।
सबको मिले एक-सा भोजन,
सबका हो समान परिधान ॥ 36 ॥

धर्मशास्त्र या दंडनीति हो,
अर्थनीति हो या विज्ञान।
वेदांगों के साथ वेद हो,
या हो कला, काव्य का ज्ञान ॥ 37 ॥

सबको मिले एक-सा अवसर,
सब हों विद्या में निष्णात।
एक सूत्र में बँधे परस्पर,
पाकर शिक्षा की सौगात ॥ 38 ॥

राजा हो या रंक रहेगा,
शिक्षा शुल्क मुक्त संस्थान।
मेरे इस विद्या मन्दिर का,
होगा 'गुरुकुल' नव अभिधान ॥ 39 ॥

जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में,
दृढ़ संकल्प शक्ति के साथ।
निज चरित्र बल से स्नातक गण,
चमकें सूर्य सदृश अवदात ॥ 40 ॥

यदि कर सका राष्ट्रभक्तों का,
पीढ़ी दर पीढ़ी निर्माण।
तो मनु की सब संतानों का,
होगा युग-युग तक कल्याण ॥ 41 ॥

कौशल जनपद की सीमा से,
अतः दूर यह ज्ञान निकेत।
करना है मुझको संस्थापित,
श्रद्धा औ विश्वास समेत ॥ 42 ॥

हिमगिरि की सुरम्य गोदी में,
जहाँ किया देवों ने याग।
पुण्य सलिलमय सरिताओं का,
संगम है वह देव प्रयाग ॥ 43 ॥

गुरुकुल की स्थापना वहीं हो,
सर्वोत्तम है वह परिवेश।
मंत्रकार ऋषियों का प्रेरक,
रहा सदा हिमवान प्रदेश ॥ 44 ॥

हिमगिरि क्या है लिखा धरा पर,
दिव्य स्वर्ग का उज्ज्वल गान।
रत्नाकर ने रचा स्वर्ग तक,
अथवा मुक्ति विमल सोपान ॥ 45 ॥

दुग्ध फेन-सी नदी धेनु नित,
गाती जिसके मंगल श्लोक।
चन्द्रकला-सी जड़ी बूटियाँ,
हरती सघन वनों का शोक ॥ 46 ॥

हरित घाटियों में उड़ते हैं,
फूलों के रंगीन वितान।
स्वर्णिम शिखर किया करते हैं,
जहाँ नित्य सौभाग्य प्रदान ॥ 47 ॥

अरुणोदय पर उषा उड़ाती,
जब आकाश कुसुम की धूल।
मानसरोवर में खिल उठते–
हैं तब रक्त कमल के फूल ॥ 48 ॥

सन्ध्या होते ही जल उठते,
नील ग़गन में अगणित दीप।
धवल चोटियों पर तिर उठते,
मोती भरे अनोखे सीप ॥ 49 ॥

देव दारुओं की छाया में,
किन्नरियों के नृत्य ललाम।
कस्तूरी मृग की कुलाँच से,
लगते और अधिक अभिराम ॥ 50 ॥

कहीं गजों के मत्त कुंभ पर,
सिंह नखों की शोणित धार।
बहकर भोज पत्र रँग जाती,
सिहरा जाती शीत बयार ॥ 51 ॥

गजमुक्ता से शिखर कपूरी,
लेट रहे हैं चरण पसार।
कभी-कभी श्यामल मेघों से,
चू पड़ती जिन पर रस धार ॥ 52 ॥

अलका की अलकों में शोभित,
जहाँ छहों ऋतुओं के फूल।
चीड़ वनों में सायं प्रातः,
उड़ती नित्य सुनहरी धूल ॥ 53 ॥

नीलाम्बरी श्रेणियाँ हिम की,
जिनके धवल सलेटी शृंग।
उदय अस्त पर लगते हैं ज्यों,
हेम खोल से ढके मृदंग ॥ 54 ॥

हिम-आच्छादित अचल श्रेणियों–
में मोती-सी निर्मल झील।
चमकीले शिखरों की छवि से,
लगती दीपधरा कन्दील ॥ 55 ॥

हिमशालाओं में हिम मानव,
यदा-कदा करते विश्राम।
हिम कूपों से उमड़ उछलते,
अम्बु स्रोत अक्षय अविराम ॥ 56 ॥

झरनों के उज्ज्वल चीनांशुक,
हिमनद की मलमलें विशाल।
चट्टानों पर नित्य बिछलती,
मृग धूसर सूरज की छाल ॥ 57 ॥

चँवर धारिणी चपल हरिणियाँ,
निकट गन्धमादन के घूम।
चल पड़ती तब उड़ने लगता,
है उनके नथुनों का धूम ॥ 58 ॥

बहुरूपी शिवलिंग शिखर पर,
दिनमणि कर कंचन अभिषेक।
गिरिजा के कपोल मण्डल पर,
लज्जा का करता उद्रेक ॥ 59 ॥

शान्त कलिन्द शृंखलाओं में,
मानशिखर का केसर भाल।
अपनी छाया से रचता है,
हीरे के पानी का ताल ॥ 60 ॥

मेहँदी रँगी हथेली जैसे,
भू पर खिले अलक्तक फूल।
हरित पीत पल्लव सम्पुट में,
गिरती ब्रह्मकमल की धूल ॥ 61 ॥

ओढ़े हुए धुँध की चादर,
ठोकर खाते कभी प्रपात।
हिमवातों से ठिठुर ऐंठते,
विजड़ित हिम उपलों के गात ॥ 62 ॥

यह अनन्त रत्नों की आकर,
देवरूप अंचलों का ईश।
कभी प्रभंजन झुका न पाया,
इसका गर्व समुन्नत शीश ॥ 63 ॥

किन्तु प्रदूषित करते हैं जो,
इसकी निर्मल पावन देह।
जिनको नहीं यहाँ की मिट्टी,
नदी, वृक्ष, फूलों से नेह ॥ 64 ॥

जो इसकी नैसर्गिक निधि का,
करते हैं अंधा दोहन।
जो इसके निश्छल पुत्रों का,
करते हैं निशि दिन शोषण ॥ 65 ॥

पुण्यतीर्थ के वे द्रोही हैं,
उनको क्षमा न करना धर्म।
घर के हों या हों बाहर के,
उनका है आचरण अधर्म ॥ 66 ॥

भारतीय संस्कृति का सहचर,
देवभूमि भारत का शीश।
हेमकुंड की अग्निशिखा-सा,
स्वर्गोन्नत हो सदा गिरीश ॥ 67 ॥

शिव की अलकों का उर्मिल जल,
कभी प्रखर गति, कभी प्रशान्त।
चन्द्रकान्त स्मिति से धोता है,
श्यामल वृक्ष राजि का ध्वान्त ॥ 68 ॥

रजत चषक से गिरी ढुलककर,
या कि तरल पारद की धार।
अथवा धेनु वत्स के मुख से,
टपकी दुग्धफेन' की लार ॥ 69 ॥

किसी विरहिणी की शैया पर,
पड़ी विकल करवट की छाप।
या कि अप्सरा का छितराया,
चन्दन चर्चित केश कलाप ॥ 70 ॥

इसी देवनग के गह्वर में,
संस्थापित कर ज्ञान कुटीर।
विद्या के एकाधिकार की,
मुझे तोड़नी है जंजीर ॥ 71 ॥

किन्तु काल कितना कठोर है,
करता है सर्वत्र विनाश।
और मनुज भी भस्मांकुर बन,
लिखता कालजयी इतिहास ॥ 72 ॥

सिकता कण बनते नगेश हैं,
भूमिसात होते प्रासाद।
सिन्धु मरुस्थल बन जाते हैं,
उत्सव बनते विषम विषाद ॥ 73 ॥

उड़ जाते हैं रंग भवन की,
भित्ति चित्र माला के रंग।
कंकालों में खो जाती है,
पद्म प्रकाशित अंग तरंग ॥ 74 ॥

मादक स्पर्श बदल जाते हैं,
नाग केंचुली में विष दग्ध।
गूँगे उपालम्भ हो जाते,
मनुहारों के शब्द विदग्ध ॥ 75 ॥

कालचक्र का यह उत्पीड़न,
कर देता भूतल दो टूक।
अहोरात्र घूमा करता है,
लेकर क्रूर नियति की लूक ॥ 76 ॥

द्वादश नेमि सदृश ग्रंथित हैं,
काल चक्र में द्वादश मास।
गर्मी, वर्षा, शरद नभ्य हैं,
तीन-तीन संवर्ग विलास ॥ 77 ॥

शंकु समान जड़ें हैं इसमें,
रजनी दिवस तीन सौ साठ।
भूत, भविष्यत, वर्तमान के
पथ पर यह चलता विभ्राट ॥ 78 ॥

काल पुरुष की कशा भयानक,
परिवर्तन के अश्व कठोर।
खिंचे जा रहे किसी अलक्षित,
औ अज्ञात लक्ष्य की ओर ॥ 79 ॥

अब भी हमें कँपा जाती है,
महाप्रलय की दारुण रात।
जब सब कुछ खो पूज्य पिता ने,
देखा था सुनसान प्रभात ॥ 80 ॥

उन बीती स्वप्निल घड़ियों की,
कथा मातृश्री से सुनकर।
हम सब भ्राताओं की आँखें,
मेघों-सी जाती थीं झर ॥ 81 ॥

स्वयं पिताश्री को उस युग का,
स्मरण मात्र देता था त्रास।
देव विभव के महाध्वंस का,
तिमिर भरा दारुण इतिहास ॥ 82 ॥

सब कुछ नष्ट हुआ प्लावन में,
किन्तु न छान्दस काव्य मरा।
ऋषियों का जयगान रहा है,
महामेध में हरा भरा ॥ 83 ॥

कविता युग के कालपत्र पर,
लिखा अमरता का वरदान।
कविता संस्कृति के अधरों पर,
मनुज प्रगति की शुभ मुस्कान ॥ 84 ॥

कविता मानवता विधायिनी,
शाश्वत मूल्यों की पहचान।
कविता सत्यं, शिवं, सुन्दरं,
कविता जीवन का उत्थान ॥ 85 ॥

नर तन पाना परम पुण्य फल,
अति पुण्यों का फल पाण्डित्य।
पूर्व सुकृत्यों का अनन्त फल,
निर्मित करना सत्साहित्य ॥ 86 ॥

शक्ति बीज है, नीर निपुणता,
है अभ्यास भूमि परिवेश।
काव्य भाव का कोमल अंकुर,
जीवन का यथार्थ संदेश ॥ 87 ॥

रागात्मक शब्दार्थ काव्य है[1],
जीवन की व्याख्या है काव्य।[2]
द्वन्द्व प्रकृति का परम रम्य वह,
सघन तीव्र अनुभव संभाव्य ॥ 88 ॥

राग द्वेष से मुक्त चित्त का,
निर्वैयक्तिक भावास्वाद।
दिव्य कलात्मक अनुभव होकर,
बनता सरस काव्य संवाद ॥ 89 ॥

---

1. आचार्य डॉ. नगेन्द्र, 2. मैथ्यू आर्नल्ड।

भाषा, छन्द, शब्द संयोजन,
अलंकार दल कुवलय पर्ण।
काव्य कलश की भाव सुधा से,
सींचें श्रुति रसिकों के कर्ण ॥ 90 ॥

श्रुति ने प्रभु तक को कवि कहकर,
दे डाला मंगल अभिधान।
कविता आत्म-अनात्मद्वन्द्व का,
युग सापेक्ष सत्य सन्धान ॥ 91 ॥

मैं कवि हूँ, कविता करना है,
मेरा धर्म और व्रत एक।
गुरुकुल मेरी सृजन भूमि है,
परम्परा प्रज्ञा की टेक ॥ 92 ॥

मंत्रों के कर्त्ता पहले ऋषि,
हम नव ऋषि उनके प्रतिरूप।
मंत्रपूत जीवन जीकर हम,
रखेंगे यह प्रथा अनूप ॥ 93 ॥

यह निर्णय कर थके नभग आचार्य कक्ष में लेट गए,
उत्साही तन्द्रिल पलकों में स्वप्न सँजोए हुए नए।
उधर ब्रह्मचारी गण अपने छपरीले आवासों में,
देख रहे थे नीलकंठ से तम विष पीते हुए दिए ॥ 94 ॥

निशा कामिनी का नीलांचल तारों के कुसुमों से भर,
नभ की उथली नील झील पर हरसिंगार सा गिरता झर।
बिछुड़ी हुई एक परिचित स्मिति सहसा मन में कौंध गई,
लगा कि जैसे चू जाएगा द्रवीभूत विद्युत का घर ॥ 95 ॥

वह मयंक जिसकी अनिन्द्य छवि को चकोर पी थे जीते,
जिसकी एक झलक पाने को कितने विकल प्रहर बीते।
जिसके मिलने की अकुलाहट पाँवों को गति देती थी,
जिसके बिना राजभवनों के सुख घट लगते थे रीते ॥ 96 ॥

आज. वही मुस्कान दीखती उन्हें चाँदनी रातों में,
कमलदलों की स्मय आभा में हल्दी रँगे प्रभातों में।
सन्ध्या की गैरिक छाया में ऋतुओं के आवर्त्तन में,
हिम शिखरों की धवल हँसी में चन्दन घुले प्रपातों में ॥ 97 ॥

अधरों के पलने में सोई वह स्मिति शिशु जैसी भोली,
या लगती अंकित ललाट पर किसी किशोरी के रोली।
निष्क्रियता की शिथिल शिराओं में नित नव ऊर्जा भरकर,
तिक्त अभावों में भरती थी यौवन की उदास झोली ॥ 98 ॥

वह मुस्कान मजीठी कलियों की मदभरी सुगन्धों में,
अथवा कभी दिखाई देती हिमनद के अनुबन्धों में।
राग रँगे परिवेशों से उग काव्यकार जिसके बल पर,
शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गन्ध के रचते बिम्ब प्रबन्धों में ॥ 99 ॥

वही प्रेरणा शब्द रूप हो मंत्रों में ढलती जाती,
वही कल्पना बन छन्दों में रूप ढूँढ़ती बलखाती।
आत्म-अनात्म द्वन्द्व से उपजी काममयी लालसा प्रखर,
अद्‌भुत दृश्यों का चित्रण कर सम्प्रेषण का गुण लाती ॥ 100 ॥

सागर तट के कंठहार में गुँथे दामिनी दीपों में,
हँस पंख से जलपोतों से भरे रुपहले द्वीपों में।
विरल हँसी वह मुक्ताओं को नया जन्म दे जाती थी,
झिलमिल झिलमिल जल लहरों पर तिरते उज्ज्वल सीपों में ॥ 101 ॥

जादूगरनी रात ने, ताना तिमिर वितान,
शान्त स्निग्ध हिमशैल की, तड़प उठी मुस्कान ॥ 102 ॥

अवचेतन की ग्रंथियाँ, धरकर रूप विचित्र,
स्वप्न पटल पर खींचने लगीं अनोखे चित्र ॥ 103 ॥

द्वितीय सर्ग

निकल तमारि तिमिर के वन से,
हँसे धान्य कलमों के बीच।
उड़ने लगी खेत महकाती,
कण-कण बिखर गुलाबी कीच ॥ 1 ॥

लगी उचकने नभ को छूने,
कँलगी पहन बैंजनी काँस।
फोड़ पोखरों के श्रृंगाटक,
पाखी लगे बुझाने प्यास ॥ 2 ॥

हरित तृणों से बुने हुए थे,
चादर से प्रशस्त मैदान।
करते नित विश्राम जहाँ पर,
मुखरित सन्ध्या और विहान ॥ 3 ॥

शान्त तपोवन के परिसर में,
पंक्तिबद्ध संन्यासी चीड़।
धर्मध्वजा से खड़े हुए थे,
ओढ़े हुए अरुण आपीड़ ॥ 4 ॥

दिए सुनाई तभी मधुर स्वर,
उद्गाता के कानों में।
ज्यों मुरली की तान मनोहर,
फूट पड़े वीरानों में ॥ 5 ॥

ऊषा देवी विकल वासना,
वृकी हमारी दूर करो।
अमरबेल-सी व्योम वृक्ष से,
धरती पर फैलो उतरो ॥ 6 ॥

एक तुम्हारा शीतल आँचल,
हर लेता संताप सभी।
नहीं बंधते मनोजयी को,
पापों के कुन्ताप कभी ॥ 7 ॥

गुरुकुल क्या था एक तपोवन,
ज्ञानपीठ विद्या गुरु का।
होता था संस्कार जहाँ पर,
बिना भेद देवासुर का ॥ 8 ॥

जहाँ छात्र उठ अरुणोदय में,
नित्य कर्म कर करते योग।
स्नान, ध्यान, जप, अग्निहोत्र कर—
करते मंत्रों का विनियोग ॥ 9 ॥

फिर वेदांग सहित वेदों का,
करते सब सस्वर स्वाध्याय।
मंत्र, देवता, मंत्रकार का,
हृदयंगम करते अभिप्राय ॥ 10 ॥

चौंसठ कला छहों शास्त्रों के,
अन्वेषित कर भाव नवीन।
लेखन, भाषण, ग्रन्थ निबन्धन,
में होते थे पूर्ण प्रवीण ॥ 11 ॥

शास्त्रार्थों की तीव्र शाण पर,
चढ़ा प्रखर मेधा के बाण।
पण्डित मान मुकुट खण्डित कर,
पाते पुरस्कार सम्मान ॥ 12 ॥

मध्यान्तर में सात्त्विक भोजन,
दूध, दही, घृत, ओदन, पूप।
रुचि के साथ ग्रहण करते थे,
पके हुए फल ऋतु अनुरूप ॥ 13 ॥

तदनन्तर निश्चिन्त भाव से,
एक प्रहर करके विश्राम।
शोधकक्ष में समाधिस्थ से,
करते नव प्रयोग अविराम ॥ 14 ॥

सन्ध्या होते ही क्रीड़ा का,
करते छात्र विविध अभ्यास।
नाट्य भवन में नृत्य गान रत,
करते हास और परिहास ॥ 15 ॥

फिर मरीचिमाली को देकर,
सन्ध्या का अतिपावन अर्घ्य।
भाव पुरस्सर हो सब करते,
गायत्री का जाप महर्घ ॥ 16 ॥

दीप शिखा के कनक हास में,
कर फिर रात्रि सूक्त का गान।
लक्ष्य निष्ठ एकाग्रचित्त हो
करते आत्मरूप सन्धान ॥ 17 ॥

अनुशासित जीवन चर्या का,
अनुपालन कर नित्य सहर्ष।
शिष्य मण्डली सहित नभग ने,
बिता दिए निज बारह वर्ष ॥ 18 ॥

मन में आया किन्तु एक दिन,
होगी जब यह शिथिलित देह।
अर्थाभाव ग्रस्त गुरुकुल पर,
घिर जाएँगे संकट मेह ॥ 19 ॥

दौड़ धूप कर दान माँगने,
जाएगा निष्ठा से कौन ?
सुख सुविधा जीवी शिक्षक तो,
वृत्ति भोग करता हो मौन ॥ 20 ॥

शिक्षा की स्वायत्त महत्ता,
है समाज का गुरु दायित्व।
अनुदानों से रुँध जाता है,
शिक्षा का उन्मुक्त भविष्य ॥ 21 ॥

किसी एक सत्ता या दल के–
प्रति जो होती है प्रतिबद्ध।
वह शिक्षा स्वच्छन्द विचारों
को करती है सदा निरुद्ध ॥ 22 ॥

शिक्षा को स्वतंत्र रखकर ही,
हो सकता है युग निर्माण।
शिक्षा नहीं लाभ की पूँजी,
शिक्षा का सम्बल है दान ॥ 23 ॥

जोड़-तोड़ की राजशक्तियाँ,
लाती हैं संकट आपात।
नीति विटप को तोड़ फेंकता,
राजनीति का झंझावात ॥ 24 ॥

सत्ताधारी का निष्ठुर हित,
लेता है शिक्षा की ओट।
करता है अपदस्थ लोकमत,
जनहित पर करता है चोट ॥ 25 ॥

मैं कवि हूँ कविता जीते हैं,
गुरुकुल में मेरे सब छात्र।
उनको कभी न विस्मृत होते,
नूतन और पुरातन शास्त्र ॥ 26 ॥

शासन की काली छाया से,
शिक्षा को रखना है दूर।
आदर्शों का ओढ़ मुखौटा,
करे न इसका दोहन क्रूर ॥ 27 ॥

मेरी अपनी वंशागत निधि,
पूज्य पिता का राज्य विशाल।
दस भागों में क्यों न उन्हीं के,
द्वारा हो विभक्त तत्काल ॥ 28 ॥

पूज्य पिता ने वानप्रस्थ ले,
छोड़ दिया होगा साम्राज्य।
मेरे नौ अग्रज निज बल से,
भोग रहे होंगे अब राज्य ॥ 29 ॥

मैं भी अपना दाय भाग ले,
गुरुकुल को कर दूँगा दान।
नैष्ठिक ब्रह्मचर्य धारण कर,
नित्य करूँगा श्रुतिरस पान ॥ 30 ॥

इससे एक ओर गुरुकुल का,
अर्थाधार बनेगा पुष्ट।
शोध निरत नव ज्ञानार्जन में,
शिक्षक, छात्र रहेंगे तुष्ट ॥ 31 ॥

उन्हें नृपति के सन्मुख जाकर,
नहीं माँगनी होगी भीख।
पूर्ण आत्मनिर्भर होने की,
उन्हें साधनी होगी सीख ॥ 32 ॥

श्रम से रहित दार्शनिक जीवन,
पुस्तकीय पाण्डित्य अपूर्ण।
संघर्षों की चट्टानों से,
टकरा कर होता है चूर्ण ॥ 33 ॥

शिक्षक के कर में रहता है,
नव पीढ़ी का मुक्त भविष्य।
प्रकट असाधारण मेधा की,
करता है वह शक्ति अदृश्य ॥ 34 ॥

बनते और बिगड़ते रहते,
शिखर सभ्यताओं के रोज़।
किन्तु ज्ञान के दिव्यभाल का
कभी न होता धूमिल ओज ॥ 35 ॥

जो स्वेच्छया ज्ञानवर्धन का,
लेते हैं संकल्प अनन्य।
वे दाता सर्वस्व दान कर,
लेते बना जन्म निज धन्य ॥ 36 ॥

राजकोष से गठित सुशिक्षा,
है सफेद हाथी के तुल्य।
अकर्मण्य कर नवयुवकों को,
कुंठित करती नैतिक मूल्य ॥ 37 ॥

जाति-जाति या मनुज-मनुज में,
शिक्षा कभी न करती भेद।
वह आकाश सदृश व्यापक हो,
करती स्थापित नित्य अभेद ॥ 38 ॥

धरती का विस्तार माप कर,
सागर की गहराई नाप।
नभ की नीली परत छाँट कर,
हरती प्रकृति जन्य परिताप ॥ 39 ॥

शिक्षा पशुबल पूर्ण देह में,
आत्मशक्ति का चिर माधुर्य।
भर देती है हर स्पन्दन में,
संवेदन बौद्धिक चातुर्य ॥ 40 ॥

कितने युग कितने समाज हैं,
करते जो पुनराविष्कार।
सत्ता शीर्ष कहाँ करता है,
विद्रोही विकास स्वीकार ? ॥ 41 ॥

छात्रों में प्रतिभा, मौलिकता,
सृजनेच्छा का कर उन्मेष।
रचनात्मक शिक्षा हरती है,
मनुज जाति के दुर्वह क्लेश ॥ 42 ॥

पर बौद्धिक स्वातन्त्र्य छीनकर,
करते जो शिक्षण प्रतिबद्ध।
गुणवत्ता से हीन विफल वे,
करते ज्ञानप्रगति अवरुद्ध ॥ 43 ॥

शिक्षा और स्वभाषा का है,
एक अटूट अचल सम्बन्ध।
बिना मातृभाषा के गूँगा–
होता है समाज जन अन्ध ॥ 44 ॥

मानव-पशु में यही भेद है,
पशु का बोध न होता शास्त्र।
किन्तु मनुज प्राचीन नया पढ़,
रचता प्रेम दया के पात्र ॥ 45 ॥

सुलभ लाभ की इच्छाएँ तज,
दुर्गम पथ का कर अभ्यास।
शिक्षाव्रती संकटों में भी,
खोता नहीं आत्मविश्वास ॥ 46 ॥

संस्कृति का इतिहास मनोहर,
शिक्षा का उन्नत सोपान।
जिस पर क्रमशः आरोहण कर,
करता मनुज राष्ट्र-उत्थान ॥ 47 ॥

सत्पुरुषों के पगचिह्नों पर,
चलकर ही मिलती है सिद्धि।
मिलती है अतीत गौरव से—
वर्तमान को ऋद्धि समृद्धि ॥ 48 ॥

यदि आचार्य-शिष्य का युगपत्,
होता नहीं निकट सम्बन्ध।
तो समझो सुन्दर प्रसून को,
विकसित किन्तु निपट निर्गन्ध ॥ 49 ॥

ज्ञान शक्ति के साथ कर्म का,
होता है यदि सतत प्रवाह।
तो युग की प्रत्येक शिरा में,
भर उठती है शक्ति अथाह ॥ 50 ॥

इन्द्रिय संयम, ज्ञान, शील मिल,
करते हैं चरित्र निर्माण।
निर्भयता, स्वातंत्र्य - चेतना
का देकर अक्षय वरदान ॥ 51 ॥

शिक्षा को व्यवसाय समझना,
है प्रबंध की भारी भूल।
व्यवसायों की होड़ बनाती,
शिक्षा को विलास के शूल ॥ 52 ॥

भौतिक सुख के संग जोड़कर,
नैतिक मूल्यों के संस्कार।
पाशव जीवन के उपवन में,
रोपेंगे सेवा उपकार ॥ 53 ॥

यह संभव होगा, होंगे जब,
निर्भर आत्म ज्ञान के केन्द्र।
एक घाट पर जल पीएँगे,
अजापुत्र के साथ मृगेन्द्र ॥ 54 ॥

मेरा गुरुकुल अर्थ पुष्ट हो,
पूर्ण मुक्त हो करे विकास।
राजकीय शिक्षा का बदले,
यह आमूल चूल इतिहास ॥ 55 ॥

राजकीय अनुदानों के–
प्रतिबन्धों से होकर स्वच्छन्द।
ज्ञान, मुक्ति का सतत लक्ष्य ले,
शिक्षा केन्द्र चले निर्द्वन्द्व ॥ 56 ॥

यह विचार कर मुदित नभग ने,
किया अयोध्या को प्रस्थान।
जहाँ राज्य के भाग प्राप्त कर,
गर्वित थी मनु की सन्तान ॥ 57 ॥

वैवस्वत मनु के पुत्रों में,
ज्येष्ठ श्रेष्ठ इक्ष्वाकु नरेश।
निज प्रचण्ड बल से अरि दल कर,
जीत चुके थे सभी प्रदेश ॥ 58 ॥

दिनमणि खचित रत्न आस पर,
होते थे जब नृप आसीन।
पाद पीठ पर मुकुट झुकाते,
कृपा-मीन, सामन्त अधीन ॥ 59 ॥

जन रंजन रक्षण में तत्पर,
लख नृप के अगणित उपकार।
यों प्रतीत होता था जैसे,
लिया अमरपति ने अवतार ॥ 60 ॥

यज्ञ खीर की तरह पूज्य थी,
जिनकी स्वसा इड़ा उपनीत।
मनुजमात्र की धर्म शिक्षिका,
कहती जिसको ऋचा पुनीत ॥ 61 ॥

जिनके निमि नामक बेटे ने,
स्थापित कर मिथिला का राज।
योग और वेदान्त शास्त्र में,
दीक्षित किया विदेह समाज ॥ 62 ॥

जिनके सुत विकुक्षि से नामित,
हुआ अवध में दिनकर वंश।
जो अपने धन, बल, विवेक से,
कहलाए मनु कुल अवतंस ॥ 63 ॥

वह विकुक्षि जो समरांगण में,
हो दुर्जेय पुरन्दरवाह।
असुरों का मद मर्दन करके,
बने पुरंजय पुरपति - नाह ॥ 64 ॥

इस दिग्विजयी वंश की, दिव्यकथा का गान,
नाराशंसी रूप से, गाते पुण्य पुराण ॥ 65 ॥

तृतीय सर्ग

देवताओं में थी बहुमान्य,
अयोध्या स्वर्गलोक का रूप।
जहाँ के शासक थे इक्ष्वाकु,
सकल भूपतियों के भी भूप ॥ 1 ॥

वृद्ध वैवस्वत मनु ने त्याग,
राज सत्ता के सब अधिकार।
परस्पर नौ पुत्रों में बाँट,
सैन्य, भू, नवनिधि, कोषागार ॥ 2 ॥

किया था वानप्रस्थ स्वीकार,
कामजा श्रद्धा को ले संग।
लगा सरयू के तट पर शान्त,
समीरण पीता तरल तरंग ॥ 3 ॥

हो चली थी कुछ कुछ पीताभ,
नृपति की उज्ज्वल कुन्तल राशि।
धान के पीले वृन्त समान,
शिखाओं का देती आभास ॥ 4 ॥

हिमानी चट्टानों-सी देह,
हो चली थी अति शिथिल अधीर।
पहाड़ों की घाटी में दौड़,
स्तब्ध ज्यों होता धीर समीर ॥ 5 ॥

कृष्ण मृग शावक का शुचिं चर्म,
बँधा था स्फीत वक्ष पर भव्य।
रेशमी धोती पर कटि सूत्र,
मूँज का बटा हुआ था नव्य ॥ 6 ॥

स्कन्ध पर लहराता था पीन,
हरिद्रा से चर्चित उपवीत।
यज्ञशाला में सायं प्रात,
स्वयं नृप गाते थे उद्‌गीथ ॥ 7 ॥

देवमाता श्रद्धा रच सूक्त,
प्राप्त कर ऋषिका का सम्मान।
अग्निवेदी के सम्मुख बैठ,
ज्योति का करती थी सन्धान ॥ 8 ॥

स्वयं माता श्रद्धा थी भक्ति,
पिता मनु थे मानो भगवान।
मिला था श्रद्धा को विश्वास,
या कि लय ने पाया था गान ॥ 9 ॥

मनस्वी के पग तल में बैठ,
स्वयं धर मुनि पत्नी का वेश।
कीर्ति की आभामणि से नित्य,
कर रही आलोकित दिग्देश ॥ 10 ॥

देवि श्रद्धा के कारण देव,
तपस्थल को कर प्रणत प्रणाम।
उसे दे 'श्रद्धाश्रम' का नाम,
साधना करते थे अविराम ॥ 11 ॥

संयमी ऋषि श्रद्धाव्रत धार,
जहाँ अर्जित करते श्रुति ज्ञान।
ज्ञान से पाकर अक्षय शान्ति,
छीनते अमरों का अभिमान ॥ 12 ॥

एक दिन खटका द्वार कुटीर,
नृपति ने खोले शांत कपाट।
सामने देखा तपसी पुत्र,
खड़ा था नत कर ललित ललाट ॥ 13 ॥

आँसुओं से धो उसका शीश,
पिता ने दिए बहुत आशीश।
तुम्हें दें सौ वर्षों की आयु,
सूर्य, वैश्वानर, गणप, गिरीश ॥ 14 ॥

कहा—सुत यह कैसा व्यामोह,
गए तुम निज जननी को भूल।
त्यागकर राजसुखों का मोह,
लिया व्रत विप्रों के अनुकूल ॥ 15 ॥

सजल नयनों से माँ ने मौन,
तपस्वी सुत का देखा रूप।
मुण्डेरी के नीचे कृशकाय,
पड़ी ज्यों ज्येष्ठ मास की धूप ॥ 16 ॥

नभग ने कहा पिताश्री देव,
बना मैं गुरुकुल का आचार्य।
आयुभर ब्रह्मचर्य व्रत धार,
रहूँगा वेदनिष्ठ हे आर्य ॥ 17 ॥

किन्तु पाने को अपना दाय,
और पाने को माँ का नेह।
बढ़ाने को गुरुकुल का कोष,
चला आया हूँ कुछ दिन गेह ॥ 18 ॥

करें गुरुकुल को चिन्ता मुक्त,
हरें अपने सुत का संताप।
पिताश्री मुझको मेरा भाग,
अग्रजों के समान दें आप ॥. 19 ॥

कहो जाकर अपना मन्तव्य,
तपस्वी सुत अग्रज के पास।
करेंगे वही मनोरथ पूर्ण,
लिया है हमने तो संन्यास ॥ 20 ॥

पिता का पाकर यह आदेश,
सभा में पहुँचा विप्र कुमार।
जहाँ पर सभासदों के मध्य,
कर रहे थे नृप नीति विचार ॥ 21 ॥

x x x

राजन् , हो कल्याण आपका,
मैं हूँ नभग आपका बन्धु।
क्षत्रिय वर्ण त्याग कर मैंने,
पाया है द्विजत्व सुख सिन्धु ! ॥ 22 ॥

पठन-पाठन, यजन-याजन का,
लेकिन कठिन लक्ष्य नरनाथ।
एक अनोखे शिक्षक कुल को,
स्थापित किया लगन के साथ ॥ 23 ॥

नैष्ठिक ब्रह्मचर्यव्रत लेकर,
जहाँ करेंगे श्रुति स्वाध्याय।
राजा रंक दलित द्विज शिक्षक,
होंगे जहाँ एक समुदाय ॥ 24 ॥

मुझको मेरा राजभाग दें,
चिन्ता मुक्त करें हे आर्य !
जिस से सभी ब्रह्मचारी गण,
हों निश्चिन्त करें निज कार्य ॥ 25 ॥

नहीं चाहता मैं शासन से,
राशि अनुग्रह या अनुदान।
दरबारों में कर पसारना,
शिक्षा का होगा अपमान ॥ 26 ॥

यह सुनते ही धराधीश का,
दंभ हुआ जाग्रत तत्काल।
धनुष सदृश भ्रूभंग खींच कर,
बोले वचन कठोर कराल ॥ 27 ॥

साधन हीन विप्रपद पाने–
का कैसा थोथा अभिमान ?
भिक्षुक होकर राजमुकुट का,
करते हो असह्य अपमान ॥ 28 ॥

शौर्य और धन हैं समाज की,
कभी न डिगने वाली नींव।
वज्र धनुष की टंकारों से,
रहते हैं साम्राज्य सजीव ॥ 29 ॥

विद्याबल पशुता के आगे,
रहता है सदैव असहाय।
विप्र अकिंचन सदा रहा है,
परजीवी, दुर्बल, निरुपाय ॥ 30 ॥

जिनके पास प्रचण्ड बाहुबल,
जिनके कोष कुबेरागार।
उनकी चौखट पर करते हैं,
शुल्क क्रीत द्विज मंत्रोच्चार ॥ 31 ॥

क्षात्र धर्म से ब्राह्म गौण है,
एक कल्पना एक यथार्थ।
क्षत्रिय दाता शूर धराधिप,
द्विज है दान दया का पात्र ॥ 32 ॥

कहा नभग ने अति विनम्र हो,
क्षमा करें मुझको सम्राट।
साधन हीन विप्र वामन है,
लघु होकर भी सदा विराट ॥ 33 ॥

द्विज का धर्म न कभी रहा है,
क्षुद्र कामनाओं की पूर्ति।
विश्वबन्धु वह ज्ञान प्रदाता,
त्याग, तपस्या करुणामूर्ति ॥ 34 ॥

तपते हुए मरुस्थल में है,
उसका जीवन मलय समान।
रथ से उतर सदा राजा ने,
रखा है तपसी का मान ॥ 35 ॥

सार्वभौम मानसी सम्पदा,
को देकर द्विज का अभिधान।
दैवी गुणवत्ता की प्रभु ने,
आरक्षित की थी पहचान ॥ 36 ॥

शारीरिक बल हिंसक पशु है,
बौद्धिक बल है मनुज प्रतीक।
किन्तु आत्मबल विप्र चिह्न है,
जो न आज तक हुआ अलीक ॥ 37 ॥

द्विज निर्भय हो धारण करता,
वेद ज्ञान का दुर्लभ वर्त्म।
सत्य और ऋत से अनुमोदित
करने को अनन्त सत्कर्म ॥ 38 ॥

जो सपत्न असपत्न क्षेत्र में,
प्रतियोगी बन करते द्वेष।
गढ़कर एक गिरोह स्वार्थवश,
पहुँचाते हैं प्रतिपल क्लेश ॥ 39 ॥

उन आसुरी बुद्धिवालों को,
करता है वह क्षमा प्रदान।
सभी सुखी हों, सब नीरोग हों
सब प्रेमी हों, सब धनवान ॥ 40 ॥

भिक्षुक होकर भी वह जग को,
देता ज्ञान विभव भरपूर।
तिल-तिल जलकर दीप शिखा-सा
करता तिमिर-अंधता दूर ॥ 41 ॥

यह न समझना बिछ जाऊँगा,
राजमार्ग पर बन कालीन।
भय प्रलोभनों से न झुकूँगा,
सदा रहूँगा अभय अदीन ॥ 42 ॥

अग्रज आप पिता जैसे हैं,
मेरा वह विनम्र अनुरोध।
करें आप स्वीकार न जिससे,
भ्राताओं में हो गतिरोध ॥ 43 ॥

नहीं चाहता कुलद्रोही का,
मुझ पर लगे सशंक कलंक।
विवस्वान की यशगाथा में,
बनूँ कुटिल स्याही का अंक ॥ 44 ॥

यदि सब भाई करें आपके,
निर्णय का अनुमोदन आर्य।
तो मैं छोड़ चला जाऊँगा,
वैवस्वत मनु का साम्राज्य ॥ 45 ॥

यह सुन अर्थ पिशाच बन्धुगण,
बोले यही हुआ है न्याय।
नहीं मिलेगा तुम्हें राज्य का,
सुई नोक जितना भी दाय ॥ 46 ॥

कहा धृष्ट ने वर्ण विपर्यय,
करना अशिव, अमंगल पाप।
हम देंगे धन धान्य आपको,
कर लें अगर आप अनुताप ॥ 47 ॥

काक काक है, हंस हंस है,
सिंह शृगाल हुए कब एक।
ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र जन,
भिन्न जाति गुण से प्रत्येक ॥ 48 ॥

हम जन्मना जाति के पोषक,
परम्परा से रखते मोह।
किन्तु सनातन प्रथा त्यागकर,
तुमने छेड़ दिया विद्रोह ॥ 49 ॥

गुरुकुल क्या है प्रथा प्रभंजक,
राजद्रोह का विप्लव केन्द्र।
तुम्हीं लड़ाने को उत्सुक हो,
गौरैया के साथ खगेन्द्र ॥ 50 ॥

कहा नभग ने बन्धु स्वार्थवश,
लगा रहे हो तुम आरोप।
रोक न पाएगा महानतम,
परिवर्तन को शासन-कोप ॥ 51 ॥

बूढ़े माता और पिता को,
तुमने दिया द्वार पर फेंक।
कहाँ गया तुम सब पुत्रों का,
पितृ प्रेम मय विमल विवेक ॥ 52 ॥

किन्तु उपेक्षित मातपिता को,
समझ आज से अपना भाग।
आजीवन सेवा का व्रत ले,
मैंने दिया सभी कुछ त्याग ॥ 53 ॥

राज्य विभव सुख के हित तुमने,
माना शुद्ध पिता - सम्बन्ध।
वर्णाश्रम की रूढ़ प्रथा का,
किया स्वार्थ प्रेरित अनुबन्ध ॥ 54 ॥

श्रद्धावश माता श्रद्धा के,
साथ पिता ने ले वनवास।
राज्य सौंपकर दुहराया है,
आर्यजनों का शुभ इतिहास ॥ 55 ॥

शोषण और लूट पर आधृत,
बन्धु तुम्हारा सत्ता मोह।
मेरे समता के विधान को,
इसीलिए कहते हो द्रोह ॥ 56 ॥

यदि समरसता को समाज में,
स्थापित करना है व्रिदोह।
तो इस विप्लव का नायक मैं,
होगा मुझे न कोई छोह ॥ 57 ॥

यह सुनकर इक्ष्वाकु कुपित हो,
बोले सुनो नभग आदेश।
सहज छोड़कर जा सकते हो,
मेरा शासित अजित प्रदेश ॥ 58 ॥

कवि पृषध्र दो बन्धु हमारे,
गए भाग निज हमको सौंप।
और एक तुम ढोंग त्याग का,
करके लगा रहे आरोप ॥ 59 ॥

भोग विषय निःस्पृह बचपन से,
कवि तज राज्य गए बन ओर।
गुरु अभिशप्त पृषध्र विरत हो,
हुए वनोन्मुख आत्मविभोर ॥ 60 ॥

और एक तुम वेदव्रती हो,
पहले तो छोड़ा घर-द्वार।
फिर संघर्षों से घबराकर,
माँग रहे हो धन-आगार ॥ 61 ॥

यही सोच अनुजों का हिस्सा,
लिया सात भागों में बाँट।
भोग रहे हैं जिसे करुष, नृग,
धृष्ट, दिष्ट, नरिष्यन्त, विराट ॥ 62 ॥

ज्येष्ठ पुत्र मैं श्राद्धदेव का,
मेरा है सब पर अधिकार।
नहीं तुम्हारे विप्र धर्म के,
योग्य कुटिल छलमय संसार ॥ 63 ॥

तुम्हें राज्यपद से वंचित कर,
मैंने किया उचित ही न्याय।
क्षत्रिय ही नृप हो सकता है,
तपसी द्विज भिक्षुक असहाय ॥ 64 ॥

द्विज होने का ढोंग तुम्हारा,
क्षात्र धर्म का है अपमान।
कभी तुम्हें राजन्य कुलों में,
नहीं मिलेगा आदर मान ॥ 65 ॥

यदि द्विज हो तो कैसा नृपधन,
यदि नृप हो तो कैसा त्याग ?
नहीं एक धागे में बँधते,
हर्ष-शोक या राग-विराग ॥ 66 ॥

वर्णधर्म भंजक विद्रोही,
देता तुम्हें प्राण का दण्ड।
पर मंत्रज्ञ समझकर तुम पर,
मैंने की है दया अखण्ड ॥ 67 ॥

प्रतिहारी इस विद्रोही को,
कर दो निष्कासित तत्काल।
नहीं हमारी खड्ग लता का,
होगा अट्टहास विकराल ॥ 68 ॥

यह सुनकर वह विप्र पदाहत,
हो, रखकर छाती पर बोझ।
उस अन्यायी राजसभा से,
निकल चला आया उस रोज़ ॥ 69 ॥

हृष्ट-पुष्ट दर्पित होता है,
दृप्त धर्म करता अतिक्रान्त।
सत्ताधारी अविश्वास से,
रहता सदा अधीर अशान्त ॥ 70 ॥

बाणविद्ध मृग की छाती पर,
जैसे गिरती मृगी कराह।
उन शर से तीखे वचनों पर,
गिरी तड़प त्यों कवि की चाह ॥ 71 ॥

X X X

देखकर सुत को खाली हाथ,
हुए मनु विचलित और अधीर।
तुहिन जल सी भौंहों के बीच,
खिंची चिन्ता की वक्र लकीर ॥ 72 ॥

जानकर परिषद् का वृत्तान्त,
बढ़ा उत्तप्त हृदय में क्षोभ।
स्वार्थ है सत्य धर्म का शत्रु,
पाप का उत्पादक है लोभ ॥ 73 ॥

निरंकुश राजतंत्र का दंभ,
नीति का करता है बलिदान।
घोंटता है विद्या का कंठ,
मोम को धुनता है पाषाण ॥ 74 ॥

लोकमत का करके अपमान,
साधते हैं जीवन की साध।
रक्त के प्यासे राजकुमार,
कहाते हैं सत्ता के व्याध ॥ 75 ॥

अकिंचन ऋषि का कर अपमान,
राजपुत्रों ने की है भूल।
धूसरित कर देगी दिन एक,
इन्हें युग परिवर्तन की धूल ॥ 76 ॥

प्रथाएँ जीर्ण-शीर्ण हों चूर,
शून्य का बन जातीं इतिहास।
युगों के सन्दर्भों में किन्तु,
खोजती अपना नवल विकास ॥ 77 ॥

विगत के गह्वर में कर बंद,
समय की झंझाओं को कौन ?
लिखेगा सन्नाटे का गीत,
निमंत्रण पाकर युग का मौन ॥ 78 ॥

तोड़ देगा पथरीले बाँध,
सुसंचित जल का प्रबल प्रवाह।
धर्म का सत्ता हित गठजोड़,
सत्य की छेंक रहा है राह ॥ 79 ॥

नभग है यद्यपि नहीं समर्थ,
अकिंचन कवि ऋषि साधन हीन।
किन्तु वह आत्मतेज का पुंज,
एक दिन लेगा दिन मणि छीन ॥ 80 ॥

उसी दिन धरती के नर नारि,
उठेंगे लेकर न्याय - कृपाण।
विषमता के फंदों को काट,
करेंगे मनुज जाति का त्राण ॥ 81 ॥

कहा मनु ने प्रिय चिन्तक वत्स,
न होना अकर्मण्य संन्यस्त।
राजभय से होकर भयभीत,
न होना पग-पग पर संत्रस्त ॥ 82 ॥

स्वास्थ्य, शिक्षा, समृद्धि व्यापार,
राष्ट्र रक्षा कुटुम्ब कल्याण।
सुदृढ़ संकल्पों के बिना कुमार,
न होता सामाजिक उत्थान ॥ 83 ॥

पुरोधा हो रखना तुम नित्य,
पारदर्शी निष्कलुष चरित्र।
अर्थ शुचिता बल से सम्पन्न,
राष्ट्र को करता व्यक्ति पवित्र ॥ 84 ॥

नीति का निर्धारण हो स्वच्छ,
अधिक संसाधन हों उपलब्ध।
असीमित क्षमतोत्पादन हेतु
करो प्रतिभाओं को उद्बुद्ध ॥ 85 ॥

मिलेगा हम सबका सहयोग,
गृहस्थी हों या हम संन्यस्त।
केतु समरसता का प्रिय पुत्र,
तुम्हीं फहराओ हो आश्वस्त ॥ 86 ॥

किन्तु अग्रज से ठान विवाद,
शील की मर्यादा की भंग।
क्षमा मण्डन है द्विज का दिव्य,
उपेक्षा है जीने का ढंग ॥ 87 ॥

अतः रह निराहार कुछ काल,
शमन कर मन के विषय विकार।
पान कर अपमानों का कूट,
जगत् को दो अमृत की धार ॥ 88 ॥

बैर से होगा बैर न शांत,
क्रोध है सब पापों का मूल।
करकता है उर में दिन-रात,
दहकते प्रतिशोधों का शूल ॥ 89 ॥

अतः हो शांत चित्त प्रिय पुत्र,
करो तुम सबका भद्र विचार।
विकुंठित कर देते हैं प्राण,
हृदय के सोए हुए विकार ॥ 90 ॥

जलो तुम कवि कपूर से नित्य,
विश्व को बाँटो पर आलोक।
फूल-सा खिलो धूल के संग,
गंध के भर दो अक्षय ओक ॥ 91 ॥

वत्स कवि नरपति के आपीड़,
तुम्हारे चरणों की हैं धूल।
कला को देने को अमरत्व,
सहो तुम पत्थर और बबूल ॥ 92 ॥

बदलने को यह जीर्ण समाज,
चुनौती करो कठिन स्वीकार।
अश्रु में भर पीड़ा की आग,
दमन का करो शांत उपचार ॥ 93 ॥

x x x

एक वर्ष सेवा तप करके,
नभग हुए सचमुच कृतकार्य।
मनु ने कहा बुलाकर उनको,
परामर्श है मेरा आर्य ॥ 94 ॥

पूज्य अंगिरा कुल के ऋषिगण,
आयोजित कर यज्ञ विशाल।
स्वर्ग प्रकामी साधक जन को,
देंगे मुक्ता - माल प्रवाल ॥ 95 ॥

लोफ वृद्धि हित न्यास रचा है,
उन ऋषियों ने सुना सहर्ष।
मंत्रकार नूतन ऋषियों को,
करते वे सत्कृत प्रति वर्ष ॥ 96 ॥

वैश्वदेव विषयक सूक्तों को,
उन्हें सुनाओ जाकर वत्स।
देंगे वे यज्ञान्त क्षणों में,
यज्ञशेष धन तुम्हें सहर्ष ॥ 97 ॥

उस धन से प्रिय वत्सल निधि का,
कर सकते हो तुम विन्यास।
ग्रसे न प्रतिभा के मयंक को,
अर्थाभावों का खग्रास ॥ 98 ॥

यह सुनकर आचार्य नभग ने,
पितृचरण छू किया प्रयाण।
जहाँ यज्ञ मण्डप में ऋषिगण,
मंत्र सहित करते हविदान ॥ 99 ॥

पढ़ने का सबको मिले, वेदों को अधिकार,
ऋषि ऋषिकाएँ मंत्र रच, पाएँ सम सत्कार ॥ 100 ॥

श्रद्धासुत नव ऋषि नभग, ले यह शिव संकल्प,
मानो रचने को चले, युग का नया विकल्प ॥ 101 ॥

चतुर्थ सर्ग

माधव का कनक प्रभात रहा,
खेतों में सरसों फूल रही।
सूरज के किरण हिंडोले में,
अलसाई कलिका झूल रही ॥ 1 ॥

मेचक रेशम से पर फैला,
उन्मत्त मयूरी नाच रही।
हरिताभ वक्ष पर गुल्मों के,
हरिणों की डार कुलाँच रही ॥ 2 ॥

नभ की नीलाभ वापिका में,
सद्यःस्नाता सुन्दरी उषा।
कमलों का अन्तर्पट पहने,
आलोकित करने लगी दिशा ॥ 3 ॥

किसलय का कुंकुम कोष फटा,
केसर बिछ गया बनाली पर।
कोकिला खींचने लगी प्राण,
भर तान विटप की डाली पर ॥ 4 ॥

छल-छल कर बहा कूप का जल,
खेतों की पंकिल नाली में।
मकरंद चाटती थी भ्रमरी,
फूलों की गंधिल प्याली में ॥ 5 ॥

बासन्ती क्षितिज वितानों पर,
छितराए कचनार पीले।
वन की एकान्त टेकरी पर,
दृग झरे मालती के गीले ॥ 6 ॥

शुक पंख सदृश गोधूम झूम,
जुट बँधे इक्षु के सरस दंड।
दर्शक पथिकों की आँखों को,
पल-पल करते थे खण्ड-खण्ड ॥ 7 ॥

विरही दह दहे पलाशों पर,
नित नव अभियोग चलाते थे।
लोहित में डूबे जपा कुसुम,
पानी में आग लगाते थे ॥ 8 ॥

बैठी मचान पर कृषक सुता,
करती खेतों की रखवाली।
प्राकृतिक त्रासदी के भय से,
जिसका मन था खाली-खाली ॥ 9 ॥

उद्दण्ड समीरण रहा छेड़,
तरु कुंजों की बन्दनवारें।
झिलमिल होते थे फूलों की,
आँखों में भ्रमरों के तारे ॥ 10 ॥

कुंजों से कलित वनांचल को,
कर रहा सुवासित यज्ञ धूम।
नव मंत्र गान कर रहे जहाँ,
उद्गाता कवि गण झूम-झूम ॥ 11 ॥

बैठे अलिन्द पर सावधान,
प्राचीन प्रतिष्ठित नव कवि गण।
चंदन चर्चित आसन्दी पर,
थे नाम लिखे जिनके शोभन ॥ 12 ॥

निर्णायक पद पर समासीन,
अंगिरा हुए कवि-स्पर्धा के।
मानो उनको अधिकार मिले,
कर्त्ता, धर्त्ता, संहर्त्ता के ॥ 13 ॥

अभिवर्त, प्रचेता, शिशु, सुकक्ष,
संवर्त और ऋषिका घोषा।
मण्डलाकार सब बैठ गए,
नक्षत्र सहित जैसे दोषा ॥ 14 ॥

लौकिक वैदिक कविताओं के,
आलोचक, श्रोता सरस हृदय।
बैठे थे थामे हुए हृदय,
सुनने को स्पर्धा का निर्णय ॥ 15 ॥

अध्यक्ष पीठ की ओर बढ़े,
घोषा के जावक रँगे चरण।
चँदनी शाटिका में लिपटा,
नीलोत्पल जैसा श्यामल तन ॥ 16 ॥

यमुना-तरंग सी अलकों में,
बल खाती गजमुक्ता माला।
वक्षस्थल पर नव निष्क कंठ,
जगमगा उठी स्पर्धाशाला ॥ 17 ॥

यदि एक बार शारदा स्वयं,
लखती अंजन वपु देवी का।
तो सर्वशुक्ल होने का भ्रम,
मिट जाता विद्या सेवी का ॥ 18 ॥

यह देख सभा में एक जरठ,
ऋषि खड़ा हुआ भृकुटी ताने।
उसके अंगार अधर फड़के,
शब्दों का लावा फैलाने ॥ 19 ॥

बोला क्या तुच्छ गृहस्थी जन,
उस पर भी एक क्षुद्र नारी।
तपसी मुनि मानस सर तट पर,
क्या खिला सकेगी फुलवारी ॥ 20 ॥

हम सभी मंत्र द्रष्टा ऋषिगण,
हैं परावाक् के अभ्यासी।
हम पुण्य देह, हम पुण्य प्राण,
हम निर्विकार हम अविनाशी ॥ 21 ॥

नारी को हमसे ऊँचा पद–
देना अवमूल्यन पुरुषों का।
ऋषि पुरुष योग्य हैं पूजा के,
यह पुण्य चलन है वर्षों का ॥ 22 ॥

वैसे भी घोषा. रुग्णा हैं,
इसके तन पर हैं श्वित्र चिह्न।
प्रारब्ध भोगने को बेबस,
यह हत भागा यह हृदय खिन्न ॥ 23 ॥

संक्रामक रोग ग्रस्त क्षय तन,
है बहिष्कार के योग्य सदा।
फिर स्वस्थ जनों के मध्य इसे,
बिठलाना है असाध्य विपदा ॥ 24 ॥

इस पर उठ वरुण अंगिरा ने,
सस्मित हो कहा—सुनो भ्राता।
यदि होती नहीं नारि जग में,
तो कैसे नर भू पर आता ॥ 25 ॥

नारी में नर है विद्यमान,
नर में नारी की सत्ता है।
दोनों की समता सिद्धि बिना,
हिलता न सृष्टि का पत्ता है ॥ 26 ॥

अंकुर उगने से पूर्व बीज,
दो मृदुल दलों में बँटता है।
फिर प्रकृति-पुरुष का युगल रूप,
वन विटप ऊर्ध्वगति बढ़ता है ॥ 27 ॥

इस तरह पुरुष-नारी मिलकर,
करते निर्माण जगत् का हैं।
नारायण का है स्थान स्वर्ण,
लक्ष्मी का स्थान रजत का है ॥ 28 ॥

नर नारी लक्ष्मी नारायण,
हैं स्वर्ण-रजत के सम्मिश्रण।
है स्वर्ण अग्नि तो सोम रजत,
दोनों की परिणति है जीवन ॥ 29 ॥

जग अग्निषोम का है प्रतीक[1],
वेदों का अंतिम निर्णय है।
है अटल स्थान यदि पुरुषों का,
नारी का पद भी अक्षय है ॥ 30 ॥

नारी नर की अर्धांश कला[2],
नर नारी के तन की गरिमा।
शिवशक्ति अर्धनारीश्वर बन,
कहते नर-नारी की महिमा ॥ 31 ॥

नर है यदि प्रत्यय का झरना,
तो नारी श्रद्धामय यति है।
यदि है पदार्थ की स्थिरता नर,
नारी उसकी जीवन गति है ॥ 32 ॥

नारी कवित्व, नारी है लय,
नारी है अदिति देवमाता।
नर नभ है तो नारी है भू,
पर्जन्य सुतों की वरदाता ॥ 33 ॥

केवल निजता के अंकन का,
है नहीं नाम जग में नारी।
वह संस्कृति की आधार शिला,
सन्तानों की नव निधि प्यारी ॥ 34 ॥

---

1. अग्निषोमात्मकं जगत् ॥ *शतपथ ब्राह्मण* ॥
ऊष्मपाः पितरोज्ञेया देवा वै सोम संभवाः
अग्निषोमात्मकं सर्वं जगत् स्थावर जंगमम् ॥ *लिंग पुराण* ॥
2. अर्धात्मा वा एष यजमानस्य यत्पत्नी—*जैमिनी ब्राह्मण*।

ढल कर भी नित्य चन्द्रमा-सी,
देती वह जन्म चाँदनी को।
चन्द्रिका स्नात ताराओं से,
भर देती अन्ध यामिनी को ॥ 35 ॥

दाम्पत्य सुखों-दायित्वों में,
वह अनासक्त कृति निष्ठा है।
निष्काम सर्जना पादप की,
फलवती अमूल्य प्रतिष्ठा है ॥ 36 ॥

संगीत-कला की शिक्षा की,
वह एकमात्र है अधिकारी।
रचती है गात्र वल्लकी पर,
स्वर ग्राम साम के हितकारी ॥ 37 ॥

नारी यज्ञों का मिथुन रूप,
दीक्षित नर की पावनता है।
सौन्दर्य-प्रेम के साथ सुघर,
उसकी स्वाध्याय प्रवणता है[1] ॥ 38 ॥

नारी है नर का दीप्त भाल,
नर की साफल्य मुकुट मणि है।
पतिव्रता धर्मशीला विदुषी,
नारी यश की हीरक कणि है ॥ 39 ॥

क्या हुआ अगर हैं देवि रुग्ण,
रोगी नर भी हो सकता है।
यह रोग नहीं संक्रामक है,
कहना कुछ बड़ी अज्ञता है ॥ 40 ॥

---

1. यद्वै पत्नी यज्ञे करोति तन्मिथुनम्—*तैत्तिरीय संहिता*।

है पूर्ण चिकित्सा साध्य श्वित्र,
पूछो अश्विनी कुमारों से।
जिनकी औषध ने किया मुक्त,
इनका तन सभी विकारों से ॥ 41 ॥

क्या तुमने इनके नहीं सुने,
अश्विनी युगल से जुड़े सूक्त।
सुनकर जिनको सुर वैद्यों ने,
कर दिया इन्हें था रोग मुक्त ॥ 42 ॥

इसलिए सभा नेत्री होंगी,
घोषा ही यह दृढ़ निश्चय है।
क्या हुआ गृहस्थी हैं यदि वे,
नारी हैं या कोमल वय हैं ॥ 43 ॥

जो धर्मशील तेजस्वी हैं,
जो सूक्त रचयिता-द्रष्टा हैं।
वह हों गृहस्थ या हों विरक्त,
वह परिभू हैं युग स्रष्टा हैं ॥ 44 ॥

सुनते ही तर्काश्रित निर्णय,
छा गया सभा में सन्नाटा।
फिर जर्जर एक प्रथा टूटी,
सागर का उतर चला भाटा ॥ 45 ॥

ऋषि के समान ही नारी को,
ऋषिका होने का मान मिला।
वेदों के लिखने-पढ़ने की,
अधिकारी हुई तुच्छ अबला ॥ 46 ॥

सम्मति से वरुण अंगिरा की,
अध्यक्ष बनी घोषा देवी।
वह सरस्वती का सचल रूप,
वह ओजमयी रचना सेवी ॥ 47 ॥

करने के बाद स्वस्ति वाचन,
फिर किया पाठ निज कविता का।
रथ रोक दिया चलता नभ पर,
मानो दिवगामी सविता का ॥ 48 ॥

घोषा की ओजमयी वाणी,
उस काव्य सभा में गरज उठी।
यों लगा गरुड़ से आहत हो,
विकराली व्याली लरज उठी ॥ 49 ॥

X X X

अश्विनी देव हमको वर दें,
वे उतर रश्मियों के रथ से,
मन्थर मलयाचल के पथ से,
विद्युत की तरल तरंगों से,
मण्डप में चरण कमल धर दें ॥
उनके हाथों में सुधा कलश,
नित बाँट रहे जीवन का रस,
ऊर्जस्वित प्राणों को बल दे
तन, मन बलिष्ठ निर्मल कर दे ॥
मधु, घृत, पय ओदन के भोजी,
अज्ञात रहस्यों के खोजी,
संवेदित मन की वीणा को,
सर्जन की क्षमता से भर दें ॥

तरु, लता, वनस्पति, औषधियाँ,
निर्मल जल की अक्षय निधियाँ,
कर मुक्त प्रदूषण से अग जग,
जन जन की आधि-व्याधि हर दें॥
घोषा के तन पर श्वेत चिह्न,
मन को करते थे नित्य खिन्न।
कर दूर उन्हें दे कंचन छवि,
वाणी पर नए मंत्र स्वर दें ॥ 50 ॥

X X X

सर्वोपरि संन्यास किन्तु है सबका मूल गृहस्थ,
ब्रह्मचर्य भिक्षुक आश्रम सब हैं इसमें विन्यस्त,
इन्द्रिय संयम और आत्मचिन्तन रत हैं जो लोग,
क्या बिगाड़ सकता है उनका घर गृहस्थ सुख भोग ?
हैं गृहस्थ पर ही आधारित तीनों आश्रमवासी।
मर्यादा से संचालित घर बन जाता है काशी।
इन्द्रिय दमन, दुःख कातरता पर हित दान समर्पण,
गृहपति के मृण्मय आँगन को कर देते हैं नन्दन।
मन चंचल मृग शावक इस पर करें न आप भरोसा,
चन्द्रोदय होने पर भी निशि कहलाती है दोषा।
मैं निष्क्रिय निवृत्ति का करती कभी न अंध समर्थन।
त्याग सहित उपभोग रहा है ऋषि जीवन का दर्शन।
मत गृहस्थ को आग बताओ इसमें मीठा जल है।
अर्थ-कामना के तड़ाग में खिला धर्म उत्पल है।
क्रमिक त्यागव्रत ही दृढ़ होकर मोक्ष धर्म होता है।
जग ज्वाला से भीत भगोड़ा सभी लोक खोता है।
बिना राग में तँचे कर्म का विरस त्याग जड़ हिम है।
चुभन शूल की सहे बिना फूलों का छूना भ्रम है।
भागो मत, दौड़ो, कायर जन समझ नहीं पाते हैं,
इसीलिए संघर्ष सिन्धु से रिक्त सीप लाते हैं ॥ 51 ॥

X X X

नील गगन के निर्मल दर्पण में प्रतिबिम्बित अरुण बिन्दु,
अवलोक पुलकती है मेरे कुन्दन ललाट की मंगल बिन्दिया,
मैं अखण्ड सौभाग्यवती मैंने निजपति को दिया समादर,
युद्धभूमि में, लोहिताक्ष खड्गों की झंकृति भर देती है
मेरी स्फीत शिराओं में अनन्त झंझाएँ औ शम्पाएँ ॥

चन्द्रप्रभ उन्नत ललाट सी ध्वजा रूप,
दाम्पत्य महल के तुंग कलश पर मैं फहराती,
मेरी सहमति लिए बिना मेरा स्वामी चलता न एक पग,
मेरे डग में धरा-सिन्धु नभ की बाँहों में मेरे ही डग ॥

मैं जीवन रथ युगल चक्र में एक,
प्रेम की समरस भू पर टेक।

अरिहन्ता मेरे सुत, पुत्री ऊषा भुवन सुन्दरी,
मौक्तिक हृदया रजनी मेरी पुत्रवधू चन्द्रिका रुपहली,
सूर्य, चन्द्र जिनके अनिन्ध पति। इसीलिए मैं,
ऋतु संवादों की अध्यक्षा।
मित्र-वरुण, अश्विनी कुमारों को धारण कर
मैं देवों को सोम पिलाती।
यजमानों को उत्तम यज्ञों का फल देकर
मैं उपासकों की आत्मा का कमल खिलाती।
मैं प्रपंच हो भूत, भविष्यत्, वर्तमान में
करती हूँ प्रवेश ऊर्जा बन सहस्थान में
देव गणों की।
भोक्तृ शक्ति मैं। मेरे बिना न होता पाचन
अशन, श्वशन, गति, श्रवण, दृश्य मैं।
मैं स्वेच्छा से कर्म निरत भू, नभ से आगे
स्वयं वश्य मैं।

मैं छान्दसी कला, गन्धर्वी, स्वर अनुशासन,
गीत, वाद्य, नर्तन रंगों का मूर्त प्रदर्शन,
मेरी रात त्रि स्वर्गों का सुख दिवस खुले गंधों के अक्षर,
सन्ध्या वीणा के कोमल स्वर संवेदन के तारों में भर, जगा
रहे हैं शब्द, स्पर्श, रस, गंध, रूप के अक्षय निर्झर।

जीवन यह दाम्पत्य चेतना का अखण्ड रस।
इसके बिना धरा है नीरस, जड़ नभ,
मेरा राग सूत्र जगती के दिग्दिगन्त के कण-कण में बस,
मुझे अखण्ड सृजन के लिए प्रेरणाएँ देते हैं निशि दिन,
मेरे रोम-रोम में बहती कला, रक्त में कृति संवेदन।

अग्नि सोम की वंशज काक्षीवती सुघोषा,
नर-नारी के विषम बोध से भिन्न एक कविता कर्मी है,
नए-पुराने काव्य स्वरों की वह मर्मी है।

X X X

क्षमा करें अपराध किसी को कष्ट हुआ हो,
धन्यवाद उनका जिनका शब्दों ने हृदय छुआ हो।
एक सभासद की शंका का यह उत्तर है,
मेरे लिए पूज्य गोष्ठी का हर स्वरधर है।

करें पाठ स्पर्धा हित आए सारे कवि गण,
नाच उठे तितली-सा जिससे हर भावुक मन।
करती हूँ मैं अब समाप्त निज कविता वाचन,
साधुवाद जो दिया आपने मुझको आसन ॥ 52 ॥

X X X

इस काव्यात्मक संभाषण में,
अनछुए बिन्दु उद्घाटित थे।
नारी को मंत्रसृजन-वाचन—
देने के स्वर प्रस्तावित थे ॥ 53 ॥

ऋषियों के मुखर समर्थन से,
विधि को नूतन आयाम मिले।
धुल गया निषेधों का काजल,
तपते मरु को घनश्याम मिले ॥ 54 ॥

वर्णाश्रम, लिंग विषमता तज,

करता जो वाणी का पूजन।
सचमुच वाणी तो उसकी है,
है ज्ञान राशि ही सबका धन ॥ 55 ॥

इसलिए समर्चा वाणी की,
करना अधिकार सभी का है।
वाणी सबकी है, वाणी से,
करना शृंगार सभी का है ॥ 56 ॥

इस तरह शारदा मन्दिर के,
सबके हित रुद्ध कपाट खुले।
मिट गए भेद नारी नर के,
धुल गए रंग काले उजले ॥ 57 ॥

तब एक-एक कर ऋषियों ने,
निज-निज कविता का गान किया।
अपनी ग्राहिका धारणा से,
श्रोताओं ने रस पान किया ॥ 58 ॥

आमंत्रित सूक्त प्रणेता जब,
कर चुके पाठ निज सम्पादित।
तब नभग नवोदित ऋषि कवि ने,
दो सूक्त पढ़े हों आह्लादित ॥ 59 ॥

हो गया जिन्हें सुन स्तब्ध व्योम,
मारुत का वेग गया ज्यों थम।
गूँजी अधरों पर ऋषिवर के,
नव रचना इदमित्था रौद्रम् ॥ 60 ॥

नभग : इदमित्था रौद्रं गूर्तवचा ब्रह्मक्रत्वा शच्यामन्तराजौ,
क्राणा यदस्य पितरा मंहनेष्ठा पर्षत्पक्थे अहन्ना सप्त हा तृम।[1]
इयं मे नाभिरहि मे सधस्थमिमे मे देवा अयमस्मि सर्वः,
द्विजाअह प्रथमजा ऋतस्येदं धेनुरदुहज्जायमाना।[2]

कष्टों के अंगारों पर तप बलिदानों के साथी !
राष्ट्र शक्ति की धेनु तुम्हीं से है संरक्षण पाती।
अरी अंगिरा की बहुमानी मंत्रकार सन्तानो,
तन, मन, धन न्यौछावर कर केतन सुराज्य का तानो।
पृथ्वी मेरी नाभि मुझे शिशु सदृश बाँधने वाली,
इसकी पावन गोद सर्वमय होली और दिवाली।
विश्वदेव विश्वात्म नभग है सबका मुक्ति प्रदाता।
समरसता मूलक समाज का स्रष्टा भाग्य विधाता ॥ 61 ॥

मैं सृजन कामना का प्रतीक।
मैं ब्राह्म-क्षात्र संगम सटीक।
सृजनेच्छा से हो प्रजाकाम,
मैं गया उषा के ज्योति धाम,

---
1. ऋग्वेद—10.61.1
2. ऋग्वेद—10.61.19

प्राणों का आज्य विनिर्गत कर,
चेतना व्योम का घन तम हर,

रवि रुद्र प्रकट कर मैं शमीक।
निर्मित करता हूँ कर्म-लीक ॥ 62 ॥

मेरा जन्म स्थल ज्ञान लोक,
मेरी गति है बेरोक टोक।
सम्पूर्ण देवताओं का घर,
मेरे सत्संकल्पों के वर,
रचते हैं गीतों के आकर,
छन्दों के साँचों में आखर।
प्रातः सन्ध्या के अश्वों पर,
अश्विनी कुमारों सा चढ़ कर,
किरणों की रस्सी से सत्वर,
नित बाँध यज्ञ का धेनु प्रकर,
दुहता हूँ मैं आलोक ओक,
मैं वीतराग मैं वीत शोक ॥ 63 ॥

मैं तात मात अग्रज विहीन।
सम्बन्ध मुक्त जल हीन मीन।
हैं स्वार्थ पिशाच कुटुम्बी जन,
अपहृत कर ब्रह्मनिष्ठ का धन,
करते हैं मिथ्या रुद्रार्चन,
बिन किए क्षुधार्थी का तर्पण।
जो विष पीकर जन हित अदीन।
रहते हैं वे अपने अधीन ॥ 64 ॥

भूर्भुवः स्वर्महः जनः तप सत्य सात होता हैं।
सप्त धातुएँ सप्त प्राण सायं प्रभात होता हैं।

पंचभूत, मन, प्राण सप्त चिति देह यज्ञ की धारक।
अग्नि, वायु, रवि, दिशा, वनस्पति, मृत्यु, वीर्य विस्तारक।
मुख, नासिका, नेत्र, श्रुति, त्वक्, मन, नाभि, शिश्न में रहते।
प्राणिमात्र के प्राणयज्ञ में भूख प्यास सब सहते।
इन्हें अन्न, मन, प्राण, बुद्धि, विज्ञान तृप्त करते हैं।
षष्ठ, दिवस मानो षड्ऋतुएँ इनमें रस भरते हैं।
छठे दिवस का यज्ञ कर्म है रसोद्रेक का होना।
छन्द मेघ है छठे दिवस जो भरता उर का कोना।
सत्य, दान, करुणा, तप, सेवा, यज्ञ और स्वाध्याय।
सप्त तत्त्व ये होताओं के कहलाते पर्याय।
ऋक्, यजु, साम, चक्षु, मन, वाणी, प्राण ओज हैं रुद्र।
शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गंध के वृत्ति भोज हैं रुद्र।
आत्मानल है देह वेदिका में बैठा चिर होता।
प्राण-अपानमयी हवियों में सुधा ज्योति का सोता।
यह सुपर्ण है गरुत्मान है दिग्दिगन्त में छवि धर।
इस होता को सतत खोजता रहता है अक्षर हर ॥ 65 ॥

x x x

सूर्य प्राण है सिन्धु नीर नित करता उसका तर्पण।
अग्नि रुद्र है आज्यधार से होता उसका प्रीणन।
अश्वी युगल रूप चालक दल वहन कर रहा तनरथ।
प्राणापान बनाते रहते जड़-चेतन का युग पथ।
प्राण रुद्र हैं सृजन कामना से होते हैं तुष्ट।
दिव्य छन्द रचना से होते अहोरात्र सम्पुष्ट।
भूमि रुद्र है वृक्ष फूल फल प्रमथ सदृश सन्तान।
व्योम रुद्र है तारकमण्डल है उनकी मुस्कान।
अन्तरिक्ष है रुद्र सोम है उसका विभा प्रसाद।
संवत्सर है रुद्र प्रकृति है उसका चिर आह्लाद।
सूर्य रुद्र है स्वर्ग लोक का कंचन कलित किरीट।
अंध तमिस्रा के तड़ाग में विकसित कुसुम मजीठ।

धर्माध्यक्ष विवेक रुद्र है प्राणिमात्र के धर्म।
देखा करता है तटस्थ हो सभी शुभाशुभ कर्म।
सप्त प्राण ये अखिल विश्व में अग्नि षोम शिव रूप।
करते हैं नश्वर जीवन को चिन्मय और अनूप।
श्वास और प्रश्वास हंस से जीवन को गति देते।
वैश्व देव खग आत्म-अण्ड को सहज भाव से सेते।
यह विश्वात्म दृष्टि याजक को पद चतुर्थ देती है।
इसके उदय बिना हवि केवल फल अदृष्ट देती है।
यज्ञ अधूरा रहा अंगिरावंशी इन क़वियों का।
कर्म अविद्या रूप मृत्यु का जन्मजात हवियों का।
भक्ति देवलोकों तक भक्त उपासक को लाती है।
महाप्रलय में देवगणों की सत्ता खो जाती है।
ज्ञान मात्र ही मोक्ष मार्ग का एकमात्र साधन है।
जन्म मरण का बन्ध कर्म है या देवाराधन है।
कर्म-भक्ति को आप वेद का गहन मर्म कहते हैं।
केवल स्वाहा को, हवियों को सत्य धर्म कहते हैं।
आत्म दृष्टि ही सत्य धर्म की मंगलमयी कसौटी।
बिना आत्म विस्तार इष्टियाँ रह जाती हैं छोटी।
आशा है सन्तुष्ट आप सब होंगे इस व्याख्या से।
मनुज-मनुज का भेद मिटेगा आत्ममयी आख्या से।
इतना कहकर ओंकार का नाद किया गुंजारित।
अचल हुए चल तरल तरंगित सिंधु हुए विस्फारित ॥ 66 ॥

x x x

स्वर क्या था जैसे घनमाला,
गड़गड़ा उठी खा तड़ित् घात।
शिखरों से गिरा शिलाओं पर
उद्दाम वेगवाला प्रपात ॥ 67 ॥

सागर की क्षुब्ध तरंगों से,
उद्भूत हुई या हुँकारें।
अथवा शार्दूल शूर रण में
हों भाँज रहे निज तलवारें ॥ 68 ॥

या कांस्य घंट पर गिरा वज्र,
तड़तड़ा उठीं या शम्पाएँ।
नभ के ज्योतित घन पिण्डों में,
या लगीं लपकने उल्काएँ ॥ 69 ॥

उठते गिरते पतंग जैसे,
अनुदात्त उदात्त स्वरों के क्रम।
सुनकर प्रमुदित हो उठे च्यवन,
मेधातिथि, भिषग, अत्रि, गौतम ॥ 70 ॥

श्रोतागण चित्र लिखित जैसे,
सुनकर सस्वर स्वर अर्थ भरे।
गूढ़ार्थ-तरंगों में तैरे,
आनन्द-सरोवर में गहरे ॥ 71 ॥

वीणा के तार हुए ढीले,
भावक नयनों में मेघ गले।
बूढ़े आचार्य अंगिरा के,
नयनों से दो खंजन उछले ॥ 72 ॥

चेतना शिथिल थी घोषा की,
ज्यों ग्रीष्मान्तक का जपा कुसुम।
थी महाशून्य को बेंध रही,
रक्तोत्पल जैसी आँखें नम ॥ 73 ॥

अम्बर में घुला गुलाल दिशा,
रँग गई क्षितिज के गालों को।
झरनों के अधरों पर रखकर,
अलसाए अरुण प्रवालों को ॥ 74 ॥

शैवाल जाल में बँधा कमल,
या खींचा मुग्ध मरालों ने।
या क्रीड़ासर के चक्रवाक,
आकर्षित किए मृणालों ने ॥ 75 ॥

आचार्यदेव आसन से उठ,
स्मित हास्य सहित बोले जय हो।
तुम कवि क्या हो युग द्रष्टा हो,
रवि आभा से वलयित वय हो ॥ 76 ॥

सब साधु साधु के नभ भेदी,
स्वर से करते थे अभिवादन।
ऋषिकाओं-ऋषियों की जय से,
गुंजित हो उठा सकल कानन ॥ 77 ॥

घोषा ने निर्णय दिया विमल,
हे अमित कांति तुम हुए सफल।
अंगिरा न्यास का पुरस्कार,
पाकर लिख दो इस युग का कल ॥ 78 ॥

यह कह निष्कों का कंठहार,
पहनाया आसन्दी तज कर।
स्कंधों पर रख अरुणिम दुकूल
श्रीफल पुष्पों से अंजुलि भर ॥ 79 ॥

अर्पित की रजत चषक में भर,
जम्बूनद निर्मित मुद्राएँ।
फिर आदर सहित समर्पित कीं,
घोषित हज़ार सुन्दर गाएँ ॥ 80 ॥

श्रोतागण का परितोष देख,
खिल उठे नभग के नयन सुमन।
घोषा के चरणों पर झुककर,
लिख दिए प्रेम से सजल नमन ॥ 81 ॥

रचना को मिला अमर गौरव,
कृतकार्य हो गए रचनाधर।
जप सभा समापक शान्ति मंत्र,
चल दिए कलाधर गुण आगर ॥ 82 ॥

इस तरह सृजन को अभिनन्दित,
प्रोत्साहित कर दे पुरस्कार।
अंगिरा वंश के ऋषियों ने,
पा लिया स्वर्ग का रुद्ध द्वार ॥ 83 ॥

वैदिक कवियों की माला में,
जुड़ गया नभग का और नाम।
नूतन ऋषि गाने लगे उन्हें,
होमान्त क्षणों में सुबह शाम ॥ 84 ॥

था हुआ पराजित एक बार,
अवसरवादी सत्ता का छल।
लिख दिया एक भावुक कवि ने,
सामान्य व्यक्ति का स्वर्णिम कल ॥ 85 ॥

वे सभी निरर्थक मानदण्ड,
हो गए आज थे टूक-टूक।
छिप गए दुर्ग के ढूहों में,
दो मुँही व्यवस्था के उलूक ॥ 86 ॥

X X X

ज्यों-ज्यों था दिनमान ढल रहा, त्यों-त्यों श्रद्धाश्रम में
मनु-श्रद्धा की विकल प्रतीक्षारत आँखों की धूनी।
किसी अनागत आशंका से धधक-धधक उठती थी,
सिसक-सिसक उठती थी कुटिया पुत्र-प्रेम से सूनी ॥ 87 ॥

अर्थलुब्ध अग्रज ही छीनें पैतृक भाग अनुज का,
अति साधारण जन का उत्पीड़न क्या रुक पाएगा ?
दण्ड दमन के बदले स्थापित कर साम्राज्य अहं का,
स्वार्थ शिखर परहित भूतल पर कैसे झुक पाएगा ? ॥ 88 ॥

सत्ता आँसू नहीं रक्त की तप्तधार पीती है,
होता है नवनीत न उसके कुटिल भुजंगी मन में।
शुद्ध लेखनी की जिह्वा को खड्ग काट लेता है,
उसके स्वप्न सुमन खिलते हैं दीन-हीन क्रन्दन में ॥ 89 ॥

उपशम, दया, दान या ममता देव-मनुज के धन हैं,
निर्वाधित संचय परशोषण असुर कोष हैं भरते।
और कबूतर से निरीह शासित जन शीश झुकाए,
भेड़ों की धसान से चलते, गिरते और घिसटते ॥ 90 ॥

महलों में उमंग वनमण्डप प्राणहीन मरघट से,
राजतंत्र के साथ लोक का रिश्ता नहीं जुड़ा है।
धर्मदीप्त चिंतन स्वतंत्रता कुंठित पड़ी हुई है,
कोई तर्क अशंक मुखर हो सम्मुख नहीं खड़ा है ॥ 91 ॥

सिंधुतीर पर स्वर्णपोत के व्यवसायी क्या जानें,
मछुओं की सीपी बटोरती झोंपड़ियाँ कब रोतीं ?
काली नंगी अस्थि शेष शय्या पर कब श्रमिकों की,
स्वेद सिक्त टाँगें पसारकर स्वप्न कुमारी सोती ? ॥ 92 ॥

हरियर तोते-सा उड़ जाता कब जन के हाथों से,
राजभवन को जानेवाला भूख-प्यास का ज्ञापन,
कौन छीन लेता है बरबस खेतों की मुस्काहट,
खलिहानों में भर जाता है कौन व्यथा-उच्चाटन ? ॥ 93 ॥

यह कैसा विधान शासन का सिर्फ मुकुट अक्षत है,
और नियम, उपनियम, व्यवस्था पद-पद पर खण्डित हैं।
अमृत सहित रत्न क्षत्रप के, विष के लिए दिगम्बर,
कोरे अर्थजाल से शब्दों के वंशज मण्डित हैं ॥ 94 ॥

बूढ़ा पिता, थकी-हारी माँ एकाकी जीवन जी,
गूँगे - बहरे बने जवानी के कलरव गिनते हैं।
और पुत्र मधुपायी भ्रमरों के समान चिर प्यासे,
फूलों के ओठों पर लटके चुम्बन-कण बिनते हैं ॥ 95 ॥

एक आँख में भी हो आँसू तो शासन मिथ्या है,
एक देह भी वस्त्रहीन हो तो समृद्धि फीकी है।
एक गोद भी दूध रहित हो तो उन्नति बस छल है,
एक हाथ भी रिक्त रहे तो हर प्रशस्ति तीखी है ॥ 96 ॥

जहाँ ओस जल से नितराए जूही के गालों पर,
ज्वालामुखियों के लावाकण तिल-तिल कर झरते हों।
जहाँ घोंसलों के तिनकों पर तेजाबी वर्षा हो,
जहाँ भूमि की सीमाओं को रक्तकूप भरते हों ॥ 97 ॥

उस नृशंस मृतप्राय व्यवस्था का पूरा परिवर्तन,
होगा जब तक नहीं, मनुज का भाग्य नहीं जागेगा।
स्वार्थ पुंज समुदाय मुखौटे नये-नये अपनाकर,
कर्त्तव्यों की बधिक-शिला पर नये मुंड माँगेगा ॥ 98 ॥

युग-संदर्भों में नियमों का संशोधन, परिवर्धन,
जनहित में करना ही पुनराकलन कहा जाता है।
यों आकर्षक और विकर्षक जीव मात्र होता है,
विधि-निषेध का किंतु मनुज-जीवन से ही नाता है ॥ 99 ॥

माँग समय की चिर विधान को नई दृष्टि देती है,
देती है नव ज्योति चाह कुछ नूतन पा जाने की।
परम्परा का मोह प्रगति की बेड़ी बन जाता है,
धारा की है नियति सिन्धु का अन्तस्तल पाने की ॥ 100 ॥

देवभूमि यह देश देवता किन्तु गगन के वासी,
और धरा का पुत्र अकेला स्थितियों से लड़ता है।
शीर्ष स्तरों पर बुद्धिवादियों की अनन्त बहसों में,
जनसाधारण घिसे-पिटे कुछ नारों को रटता है ॥ 101 ॥

उसके दैनन्दिन जीवन की अनदेखी कठिनाई,
प्रतिस्पर्धी बन कभी वाद-मंचों से टकराती है।
तभी व्यवस्था नीति-पत्र रच आत्मतुष्ट हो जाती,
विद्रोहों की भाषा उसको रास नहीं आती है ॥ 102 ॥

वर्णाश्रम या वर्ग-विभाजन, बौद्धिक गुण, क्षमता, बल,
उत्पादन, उपभोग प्रकृति संसाधन की गुणवत्ता।
स्वस्थ समन्वित स्थितियों में ही मीठे फल देते हैं,
नहीं डाल की शोभा होता एक अकेला पत्ता ॥ 103 ॥

अच्छा हो मेरे विधान पर पुनः स्वस्थ चिन्तन हो,
मानव के सामूहिक हित का मैं कट्टर हामी हूँ।
नहीं व्यक्ति के हित से बढ़कर कोई धर्म नियंता,
मैं पहले जनता का सेवक फिर उसका स्वामी हूँ ॥ 104 ॥

जो विधान के परम्परित जड़ रूपों के हामी हैं,
उनसे कहो धरा पर पहले गढ़ें महामानव को।
निज चरित्र की पार दर्शिनी झाँकी के परदे से,
चीर फेंक दें भ्रष्ट व्यवस्था के कुत्सित दानव को ॥ 105 ॥

कर्म, भावना और समर्पण से परिपूर्ण व्यक्ति को,
सत्य शिखर से अचल शान्ति का स्रोत बहाना होगा।
जहाँ विश्व का नीड़ न टूटे, उस संकल्प विटप पर,
रंग-बिरंगे भाव खगों का गेह बसाना होगा ॥ 106 ॥

बिना थके कर जहाँ करें नित श्रम-उद्यम का पूजन,
जहाँ बुद्धि की भूमि विचारों के अंकुर बोती हो।
धर्म, पंथ, भाषा, वर्णों की जीर्ण विषम प्राचीरें,
जहाँ न मानव की गरिमा को काजल से धोती हों ॥ 107 ॥

वहीं व्यक्ति का व्यापक हित है, वहीं राष्ट्र रक्षित है,
वहीं फले-फूलेगी मानव के समाज की क्यारी।
अब इक्ष्वाकु सुनें फिर उनकी संतानें दुहराएँ,
करें बदलने की समाज को वह पूरी तैयारी ॥ 108 ॥

नभग आज जो माँग रहा है वही श्रेय का पथ है,
समता की छाया में संघर्षों से त्राण मिलेगा।
सदियों का इतिहास धुंध के पार कभी देखेगा,
इसी धरा पर उसे स्वर्ग का स्वर्ण विहान मिलेगा ॥ 109 ॥

धरती छोड़ अधर में जाकर जो निचोड़ने नभ को,
उड़ते हैं कल्पना देश में वे अबोध पागल हैं।
निज को बिना सँवारे जगती का भूगोल सजाना,
मिथ्या भ्रम है या कुँवार का नीरहीन बादल है ॥ 110 ॥

श्रद्धे कहो, तुम्हें किस बेटे की जननी होने का,
गर्व अलंकृत कर सकता यह दुविधा बहुत बड़ी है।
देव ! स्पष्ट निर्णय है, श्रद्धा का सर्वस्व नभग है,
जन-जन का तारक वह मेरे मनु की वंश-कड़ी है ॥ 111 ॥

प्रेम, दया की मूर्ति नभग सच्चाई का दर्पण है,
हम दोनों का सच्चा प्रतिनिधि, मानवता की थाती।
वही विषमताओं की आँधी में निर्वाध जलेगा,
जनवादी लेखन की होगा वही अकम्पित बाती ॥ 112 ॥

अब पूरा परिदृश्य बदलने को है, मन कहता है,
करवट लेती हुई समय की धारा नहीं रुकेगी।
आँखों में बल रही दिवाली किसी हठी अंधड़ के,
तम दंशित पाँवों में नहीं झुकेगी, नहीं बुझेगी ॥ 113 ॥

इतना कह मनुसंगिनी, छोड़ अधीर चकोर,
दीप दान करने चली, देवालय की ओर ॥ 114 ॥

पंचम सर्ग

सिन्धु की गहराइयों में,
स्वर्ण का नभयान डूबा।
रश्मियों का देश बनकर
रह गया केवल अजूबा ॥ 1 ॥

नील चादर पर नदी के,
चित्र थे अगणित बनाए।
जो उषा ने साँझ ने आ,
वे सभी तिल-तिल मिटाए ॥ 2 ॥

पंछियों ने घोंसलों के,
डगमगाते द्वार खोले।
फुनगियों पर पादपों की,
थे बयाओं के हिंडोले ॥ 3 ॥

चीखती थी पल्वलों के,
तीर पर आ चक्रवाकी।
अश्रुपूरित आँख चकवे की,
बनी थी मौन साखी ॥ 4 ॥

बस्तियों में पाकशालाएँ,
उड़ाती धूम के पट।
पनघटों पर खनखनाने,
लग गए रीते हुए घट ॥ 5 ॥

नील अलकों में प्रतीची की,
उगा हीरक सितारा।
चण्डिका के खड्ग जैसा,
चाँद का दहका कगारा ॥ 6 ॥

साँझ का गैरिक दिगंचल,
खींचकर दिन नाथ दौड़े।
क्रुद्ध होकर वारुणी ने,
तारकों के तीर छोड़े ॥ 7 ॥

मृगशिरा नक्षत्र इसकी,
दे रहा पल पल गवाही।
छूट पाई आज तक भी,
भाल से नभ के न स्याही ॥ 8 ॥

किरण की कन्या दबोचे,
बढ़ रहा था प्रेत तम का।
धूप तरुओं से फिसलकर,
रच रही थी चित्र भ्रम का ॥ 9 ॥

मन्दिरों में आरती के,
शंख का जयनाद गूँजा।
और गृहिणी ने दिया धर,
देव तुलसी कोट पूजा ॥ 10 ॥

बैलगाड़ी की रसीली,
घंटियों से भर गया वन।
गोष्ठ में विश्राम करने,
लौट आया गोप का धन ॥ 11 ॥

देखकर प्रिय का शुभागम,
द्वार पर आई प्रिया झट।
पोंछ आटे से सने कर,
स्वेद से भीगी हुई लट ॥ 12 ॥

पर नभग कुछ अनमने से,
चल रहे थे आँख मीचे।
योजना भावी बनाते,
धेनुओं के ठीक पीछे ॥ 13 ॥

एक झटका-सा लगा जब,
शृंग का कर्कश सुना स्वर।
डमरुओं के नाद से डर,
कँप उठे दिग्पाल थर-थर ॥ 14 ॥

थी चिता की राख उड़ती,
धूसरित कर उत्तरापथ।
कौन बतलाता वहाँ पर,
सृष्टि की इति थी कि या अथ ? 15 ॥

धेनु की खुरधूल से पथ-
अंध हो कुररी वराकी।
जिस जगह तड़पी वहीं पर,
धुर्जटी प्रकटे पिनाकी ॥ 16 ॥

सामने देखा खड़ा था,
एक काला नर भयानक।
स्कंध पर अजगव पड़ा था,
मुष्टिका में व्याल शायक ॥ 17 ॥

भूमि को पग, तन निलय को,
छू रहा था सिर गगन को।
यों लगा वह भीम प्रतिमा,
ग्रस्त कर लेगी भुवन को ॥ 18 ॥

नील पिंगल कुन्तलों में,
रेंगते विषधर हठीले।
लोचनों से झर रहे थे,
चाँद तारे लाल - पीले ॥ 19 ॥

शूल पर नर मुण्ड टाँगे,
बाँध बाँहों में दिशाएँ।
अट्टहासों में गरजती,
बिजलियाँ गर्भित घटाएँ ॥ 20 ॥

घोर काले रंग की उष्णीष,
से बाँधे लटों को।
ऊन के उपवीत से,
घेरे हुए कटि के तटों को ॥ 21 ॥

श्याम गज के चर्म से—
ढक वक्ष, कटि जंघा युगल को।
यों लगा कदली पटल पर,
रख दिया अंजन अचल को ॥ 22 ॥

अस्थियों के कुण्डलों में,
लपलपाती थीं शिखाएँ।
या कि अस्ताचल शिखर पर
बह चलीं लोहित घटाएँ ॥ 23 ॥

कर रहा था वह यमान्तक,
ध्वंस की हुंकार पल-पल।
सुन जिसे निस्तेज था,
गजराज या मृगराज का बल ॥ 24 ॥

धूम्र कुण्डल-सी जटाओं,
से छिटकते वह्नि के कण।
लिख रहे थे ताम्रवर्णी,
व्योम पर छवि 'कृष्णदर्शन' ॥ 25 ॥

श्याम छवि परिधानधारी,
रौद्र वपु के मुख्य कारण।
भव कहा श्रुति ने उसे,
पौराणिकों ने 'कृष्णदर्शन' ॥ 26 ॥

बाँधकर गोमण्डली को,
पाश में शिपिविष्ट बोले।
सागरों में ज्वार उमड़ा,
पर्वतों के प्राण डोले ॥ 27 ॥

ये सभी गाएँ, शकट, धन-
धान्य, यश, सर्वस्व मेरा।
सुन नभग के लोचनों में,
छा गया गहरा अँधेरा ॥ 28 ॥

कामना की कनक लतिका,
थी प्रभंजन ने उखाड़ी।
बंद कर दी या नभग के,
भाग्य की खुलती किवाड़ी ॥ 29 ॥

यों लगा उड़ दूर नभ में,
गिर पड़ा हारिल विजन में।
एक मर्मान्तक कथा का,
कर गया विस्तार मन में ॥ 30 ॥

कृष्णदर्शन—'छोड़ दो यज्ञान्त का
अवशिष्ट यह कल्याण धन है।'
नभग—'झूठ है यह अंगिरा के
न्यास का सम्मान-धन है' ॥ 31 ॥

कृष्ण दर्शन—'हर किसी यज्ञान्त के,
अवशेष पर अधिकार मेरा।'
नभग—'और कविता सत्र में,
स्पर्धाजयी सत्कार मेरा' ॥ 32 ॥

कृष्णदर्शन ने कहा,
तुमको न मैं यह भाग दूँगा।
नभग बोलें सत्य यदि तुम,
तो सभी कुछ त्याग दूँगा ॥ 33 ॥

नभग—'इस निरर्थक वाद का,
लेकिन करेगा कौन निर्णय ?'
कृष्णदर्शन—'सत्य का अविचल पुजारी,
जो सदय हो और निर्भय' ॥ 34 ॥

मैं तुम्हारे ही पिता को,
सौंपता हूँ भार इसका।
दें वही निर्णय, विवादित,
धेनु धन का भाग किसका ॥ 35 ॥

x x x

कहा नभग ने श्रद्धाश्रम जा,
पूज्य पिताश्री मैं हूँ दीन।
सत्कृत होकर भी अभाव,
की वापी का मैं प्यासा मीन ॥ 36 ॥

न्यास पुरस्कृति से आह्लादित,
पुष्कल धन पा हुआ अदीन।
किन्तु अचानक तस्करपति ने,
पथ में लिया सकल धन छीन ॥ 37 ॥

नए सूक्त सुन वरुण—
अंगिरा ने था दिया हमें उपहार।
शत-शत रजत हेम मुद्राएँ,
शकट, दुधारू धेनु हज़ार ॥ 38 ॥

किन्तु हाय दुर्दैव नियति ने
हम से किया भयंकर छल।
कृष्णशवा ने छीन लिए हैं।
बरबस नींद चैन के पल ॥ 39 ॥

एक वर्ष से अधिक हो गया,
भूख-प्यास सहते-सहते।
दुःखद अभावों के सपनों की
करुण कथा कहते-कहते ॥ 40 ॥

सोचा था संचित निधि द्वारा,
सभी योजना होंगी पूर्ण।
किन्तु कल्पतरु की अभिलाषा
क्रूर नियति कर बैठी चूर्ण ॥ 41 ॥

वह प्रतिभा अर्जित कविता धन,
पुरस्कार की दुर्लभ राशि।
अगर न मेरी है तब तय है,
मिथ्या वरुण अंगिरा न्यास ॥ 42 ॥

निर्बल, निर्धन भिक्षुक जन हित,
यह करुणा का दान नहीं।
छप्पर फाड़ प्रमादी जन को,
मिला भाग्य-वरदान नहीं ॥ 43 ॥

काव्य वस्तु के जटिल शिल्प को,
कसा निकष पर विज्ञों ने।
पण्डित रत्न समझकर वह धन,
दिया मुझे सर्वज्ञों ने ॥ 44 ॥

कृष्णशवा कहते हैं इसका,
न्याय आपके है कर में।
आप सत्य वक्ता हैं विचलित,
होंगे नहीं लोभ डर में ॥ 45 ॥

यह सुन श्राद्धदेव श्री मनु का,
लगा दहकने मुख मण्डल।
न्याय तुला पर लगे झूलने,
सुविचारित निर्णय के पल ॥ 46 ॥

पुत्र नहीं वह तस्करपति हैं,
वह हैं हेम भुजा शंकर।
सृष्टि विधाता अग जग पालक,
ज्ञान प्रदाता प्रलयंकर ॥ 47 ॥

रुद्रदेव, हरिकेश, कपर्दी,
सेनानी, शिव अविनाशी।
व्युप्तकेश वह स्थाणु स्मरान्तक,
अवढ़रदानी, कैलाशी ॥ 48 ॥

एक ओर तुम एक ओर वह,
मेरे लिए धर्म संकट।
घोर अभावों से व्याकुल सुत,
कवि जीवन का त्रास विकट ॥ 49 ॥

किन्तु न्यायपति अविचल रहकर,
तजता नहीं न्याय का पंथ।
चाहे छूटें भोग, निकट जन,
चाहे हो जीवन का अंत ॥ 50 ॥

यज्ञ शेष पर स्वत्व रुद्र का,
दक्ष यज्ञ का है निर्णय।
विवश मानने को जिसको हैं
देव, दनुज सब मनुज सदय ॥ 51 ॥

अतः धर्म चेता कवि बेटे,
उन्हें सौंप दो धन जाकर।
वही तुम्हारे काव्य भाग के,
निर्णायक हैं करुणाकर ॥ 52 ॥

यह निर्णय सुन स्वस्थ चित्त हो,
नभग झुकाए अपना शीश।
गए जहाँ पर धेनु मण्डली,
बंधक बना खड़े थे ईश ॥ 53 ॥

कहा विनत हो विश्वनाथ हे,
यह सब विभव आपका भाग।
निर्णय है यह पूज्य पिता का,
मैंने दिया सभी कुछ त्याग ॥ 54 ॥

जग में कोई वस्तु नहीं है,
जिसमें हो न आपका वास।
उन सबको निज कह संचित कर,
करता मनुज स्वयं का नाश ॥ 55 ॥

निःस्पृहदाता श्रेष्ठ इन्द्र से,
कहते हैं ऋषि कक्षीवान।
धनदाता या द्रविणोदा का,
करती अग्नि ऋचाएँ गान ॥ 56 ॥

रुद्रदेव बोले प्रमुदित हो,
जैसे खिले नील जलजात।
सचमुच सत्य निष्ठ निर्णायक,
निकले वत्स तुम्हारे तात ॥ 57 ॥

सत्य धर्म है सत्य शील है,
सत्य सृष्टि का अविचल मूल।
नहीं सत्य से बढ़कर कोई,
स्वर्नौका `का वह मस्तूल ॥ 58 ॥

विकट विपद में भी करता जो,
सत्य धर्म का अनुपालन।
सत्य संध उस धर्मव्रती का,
सार्थक है जीवन धारण ॥ 59 ॥

प्यारे पुत्र लोभवश तुमने,
घोटा नहीं सत्य का कंठ।
हो जाता अन्यथा तुम्हारे,
ब्राह्म-क्षात्र का तेज विनंठ ॥ 60 ॥

मैं प्रसन्न हूँ, पुरस्कार में,
देता हूँ अक्षय ऐश्वर्य।
इन विपरीत परिस्थितियों में,
अविचल रहा तुम्हारा धैर्य ॥ 61 ॥

देता हूँ मैं तुम्हें अलौकिक,
ब्रह्मकला का दुर्लभ ज्ञान।
जिसके बिना नहीं होता है,
किसी उपासक का कल्याण ॥ 62 ॥

सत, चित् तुम आनन्द रूप हो,
करो आत्मरस का सन्धान।
इस अनात्म के तप्त कुण्ड से,
अगर चाहते हो नित त्राण ॥ 63 ॥

यह सब मुझमें, मैं इन सबमें,
रहता हूँ प्रिय ओतप्रोत।
आत्म-अनात्म रूप होकर मैं,
बहता बन जगती का स्रोत ॥ 64 ॥

त्याग सहित उपभोग साध्य है,
नश्वर दृश्यमान सब ठाठ।
आत्म तत्त्व ही नित्य शुद्ध है,
पढ़ो हृदय से पक्का पाठ ॥ 65 ॥

नहीं एक के हो रह सकते,
हैं पदार्थ जो प्रकृति प्रदत्त।
पर हित कर्मों का सम्पादन,
करके, कर लो मोक्ष करस्थ ॥ 66 ॥

सृष्टि यज्ञ है मुझ ईश्वर का,
उसके घटक यज्ञ के शेष।
शैव भाव से ही संभव है,
उनका निज उपयोग विशेष ॥ 67 ॥

खुद जीकर सबको जीने दो,
सबका है जग पर अधिकार।
प्राणिमात्र का हित सम्पादन–
करो, यही शिवदर्शन-सार ॥ 68 ॥

यह कहकर अभिभूत नभग को,
साम्ब सदाशिव हुए अलक्ष।
सत्यमेव जयते का पावन मंत्र
लगा होने प्रत्यक्ष ॥ 69 ॥

इधर पिता माता को आकर,
सभी सुनाया कौतुक वृत्त।
अनुमति पाकर चले वहाँ से,
संग लिए धन रुद्र प्रदत्त ॥ 70 ॥

गुरुकुल की नवनिर्मित निधि को,
वत्सल निधि का देकर नाम।
नभग देव ने वह सारा धन,
संचय हेतु दिया निष्काम ॥ 71 ॥

यह सर्वस्व दान शिक्षक को,
बना गया फिर श्रद्धानंद।
श्रद्धापुत्र नभग थे मानो,
श्राद्धसूक्त के उज्ज्वल छन्द ॥ 72 ॥

लेने को संन्यास नभग ने,
त्याग पत्र कुल गुरु को सौंप।
विद्या के पवित्र परिसर में,
दिया दान का बिरुआ रोप ॥ 73 ॥

तभी उठा यह प्रश्न कौन,
होगा गुरुकुल का नव आचार्य।
कौन करेगा पूर्ण आपके,
बाकी बचे अधूरे कार्य ? 74 ॥

इस असमय उपजी चिन्ता ने,
मन पर किया गहन आघात।
कट्टरपंथी द्विज संघों की,
देखी बिछी अजेय बिसात ॥ 75 ॥

अन्त्यज, दलित और पिछड़ेजन,
शिक्षित होकर भी हों त्याज्य।
यही चाहते रहे युगों से,
स्वार्थ सिद्ध दंभी साम्राज्य ॥ 76 ॥

इसीलिए कुछ मुखर विरोधी,
स्वर सुन नभग हुए बेचैन।
बोले योग्य द्विजेतर स्नातक,
को हरनी होगी यह रैन ॥ 77 ॥

बुला सभी द्विजसंघ सदस्यों,
को इसलिए किया प्रस्ताव।
एक द्विजेतर उत्तम गुरु का
वरण करे कुल का समुदाय ॥ 78 ॥

देखा तभी धृष्ट को सम्मुख,
खड़े हुए नत शिर कर बद्ध।
एक अतृप्ति अधर से लिपटी,
अचल विराग भाल से नद्ध ॥ 79 ॥

फेंक निषंग शरासन भू पर,
बोला हृदय ग्लानि से खिन्न।
मेरे प्यारे बन्धु क्षमा हो,
मैंने किया ब्रह्मव्रत छिन्न ॥ 80 ॥

राज सभा में राजदर्प से,
आहत किया आपका मान।
विश्वात्मा के सुदृढ़, भाव पर,
तनिक न दिया बंधुवर ध्यान ॥ 81 ॥

अतः मुझे भी आप कृपाकर,
दें विप्रत्व विभा का दान।
मैं भी करूँ जन्म भर रहकर
गुरुकुल में विद्या रस पान ॥ 82 ॥

यह कहते ही विनत धृष्ट के
नयनों से उमड़ी जल धार।
सिसक-सिसक नाभाग स्कंध का
करने लगी अमल श्रृंगार ॥ 83 ॥

सजल दृगों से मुदित नभग ने
पकड़ धृष्ट के दोनों हाथ।
कहा बन्धु तुमको पाकर मैं
हुआ आज कृतकार्य सनाथ ॥ 84 ॥

स्वस्थ चित्त कर पुनः धृष्ट से,
कहा करो तुम भी प्रस्ताव।
अनुमोदित होने पर जिसके
भरें रिक्त सदियों के घाव ॥ 85 ॥

अपने शील ज्ञान के बल पर,
त्यागी किन्तु द्विजेतर आर्य।
गुरुकुल के वैदिक विभाग का,
होगा अब नियुक्त आचार्य ॥ 86 ॥

द्विज, अन्त्यज या पिछड़ेपन का,
नहीं ज्ञान से कुछ संबंध।
विद्या तो तप, त्याग, दया का,
भेद रहित मानव अनुबंध ॥ 87 ॥

यह बालक है योग्य द्विजेतर,
पर है शील ज्ञान सम्पन्न।
प्रतिभा साधन पूर्ण सत्यरत,
होगा कभी न लक्ष्य विपन्न ॥ 88 ॥

इसीलिए मैं इसे गर्व से,
सौंप रहा हूँ गुरु दायित्व।
आदर्शों का मूर्त रूप यह,
नियम बनेंगे इसके कृत्य ॥ 89 ॥

यह इस शिक्षक कुल का वंशज,
कहलाएगा मेरा अंश।
इसे सदा नाभाग नाम से,
स्मरण करेगा कवि का वंश ॥ 90 ॥

भैया धृष्ट स्वयं तिलकांकित,
करें ब्रह्मचारी का भाल।
परिवर्त्तन के महापर्व का,
हो आरंभ यहाँ तत्काल ॥ 91 ॥

अपनी भूल मान लेना ही,
पापों का है प्रायश्चित्त।
विगत छोड़ आगे की सुधि ले,
कहते हैं यह चिन्तन-वित्त ॥ 92 ॥

श्रुति धर होकर क्षुद्र द्विजेतर
भी बन सकता है प्रतिमान।
मेष ऊर्ण के छनने से छन,
हो जाता ज्यों सोम पुनान ॥ 93 ॥

शिष्य पुत्र जैसा होता है,
अतः नभग का सुत नाभाग।
भर देगा राजन्य कुलों में,
यह नव परिवर्त्तन की आग ॥ 94 ॥

इतना कहकर नभग देव ने,
सबको दे पावन आशीष।
किया हिमालय पर आरोहण,
झुके देख जिनको गिरि-शीश ॥ 95 ॥

देवगणों ने नन्दन वन के,
बरसा कर अति दुर्लभ फूल।
उस आदित्य ब्रह्मचारी की
धारण की माथे पर धूल ॥ 96 ॥

ब्रह्मचर्य के अतुल ओज से
धुनकर काल पुरुष का शीश।
छन्द देह धारण कर मानो,
नभग हो गए अपर गिरीश ॥ 97 ॥

नभग न थे संकीर्ण राजसुत,
कोरे कवि नभचारी जीव।
वह युगद्रष्टा क्रान्ति. दूत थे,
ऊर्जाओं के स्रोत अतीव ॥ 98 ॥

वर्ण जन्मना नहीं कर्मणा,
था जिनका शाश्वत उद्घोष।
हँसते-हँसते सहा जिन्होंने,
कट्टर द्विज संघों का रोष ॥ 99 ॥

किन्तु आर्ष शिक्षा को देकर,
युग व्यापी चिंतन आयाम।
मनुज मात्र के लिए सुलभ कर–
दिए ज्ञान-विज्ञान प्रकाम ॥ 100 ॥

नारी शिक्षा के फ़िर खोले,
जिसने विजड़ित कपट कपाट।
वेद ज्ञान का अधिकारी कर,
उन्नत किए अछूत ललाट ॥ 101 ॥

जिसने तच कर कष्ट-अनल में
जग को दिया विमल आलोक।
राजदण्ड जन तिरस्कार भय,
जिसे न पाए पथ से रोक ॥ 102 ॥

बुद्धिजीवियों की कुंठाएँ,
राजनीतिगत अवसर वाद।
राजकर्मियों का विलास सुख,
भर न सका जिसमें अवसाद ॥ 103 ॥

वह वैश्वानर का जन प्रतिनिधि,
शान्ति निकेतन का मधु छन्द।
मैं नाभानेदिष्ठ कहूँ या,
उसे नभग या श्रद्धानन्द ॥ 104 ॥

सरल, निरक्षर, निर्धन प्राणी,
खो बैठे जीवन विश्वास।
गहरे अंधकार में डूबा,
भारत का बहुजन भग्नाश ॥ 105 ॥

यदि दे सका मुक्त शिक्षा का,
नवयुग को तारक संदेश।
गुरुकुलीय शिक्षा की पद्धति,
बना सकी उत्तम परिवेश ॥ 106 ॥

तो होगा निश्चय ही सुखकर,
भारत का विक्रान्त भविष्य।
नई पीढ़ियाँ समझ सकेंगी,
कर्त्तव्यों का गुरु दायित्व ॥ 107 ॥

नगरों, ग्रामों, मलिन बस्तियों—
में नंगे बच्चे कंगाल।
बिना पुष्ट आहार भटकते,
भूखे-प्यासे हाल-विहाल ॥ 108 ॥

बच्चे स्वस्थ नहीं होंगे तो,
राष्ट्र रहेगा कैसे स्वस्थ ?
दुर्बल कच्ची नींव महल की,
होती बहुत शीघ्र भूमिस्थ ॥ 109 ॥

साक्षरता के बिना बालश्रम,
का शोषण होता भरपूर।
बेहतर जीवन स्तर देने का—
उसे, स्वप्न हो जाता चूर ॥ 110 ॥

बुनियादी सुविधाएँ देकर,
सबको शिक्षित करना धर्म।
बच्चों का निर्माण भक्ति है,
बचपन की रक्षा सत्कर्म ॥ 111 ॥

माता मेरी भूमि पुत्र मैं,
इसका करूँ सदा सम्मान।
मातृभूमि की रक्षा के हित,
हों उत्सर्ग भले ही प्राण ॥ 112 ॥

X X X

समरसता की भूमि पर,
शोषण मुक्त समाज।
स्थापित जब होगा तभी,
होगा पूर्ण सुराज ॥ 113 ॥

कलासृजन को मानना,
मात्र एक व्यवसाय।
रचनाधर्मी क्षेत्र में,
बहुत बड़ा अन्याय ॥ 114 ॥

विद्या माता मुक्ति की,
आत्मोन्नति की खान।
मनुज मात्र की पूर्णता,
शिक्षा की पहचान ॥ 115 ॥

परिशिष्ट

कथासार तथा अभिधान

प्रथम सर्ग

वैवस्वत मनु की पत्नी श्रद्धा से दस पुत्र उत्पन्न हुए। इनमें नभग छोटे किन्तु मेधावी पुत्र थे। कुलगुरु वशिष्ठ के आश्रम में वह वेदाध्ययन करने के लिए गए। विद्या के लिए पूर्ण समर्पित नभग के मन में राजकीय सुखों का परित्याग कर ब्राह्मणत्व अंगीकार करने की इच्छा उत्पन्न हुई। वह मंत्रकार ऋषि बनना चाहते थे, अतः वशिष्ठजी से उन्होंने प्रश्न किया कि वर्ण-व्यवस्था जन्म के आधार पर मानी जाए या गुण-कर्म के आधार पर। प्राचीन काल में आचार्य समावर्तन संस्कार करते हुए शिक्षापूर्ण होने पर ही विद्यार्थी को वर्ण आवंटित करते थे। नभग की रुचि देखकर वशिष्ठ ने उन्हें ब्राह्मणत्व प्रदान किया। यह एक क्रान्तिकारी कदम था। नभग ने इस दृष्टि से शिक्षा में परिवर्तन के लिए एक नवीन शिक्षणालय 'गुरुकुल' नाम से खोलने की योजना बनाई। हिमालय की तलहटी में दो नदियों के संगम पर उन्होंने वशिष्ठ के गुरुकुल को स्थानान्तरित किया। नभग की दृष्टि में 'उपह्वरे गिरीणां संगमे च नदीनां धिया विप्रोऽजायत्' यजुर्वेद का मंत्र निहित था। पर्वतों की उपत्यका तथा नदियों का संगम काव्य-रचना तथा विद्याध्ययन के लिए सर्वोत्तम स्थान हो सकता है। यही सोचकर नभग ने ऐसे ही परिवेश में गुरुकुल की स्थापना की।

द्वितीय सर्ग

गुरुकुल के छात्रों की दिनचर्या का वर्णन है। इसमें आर्ष पाठविधि का भी उल्लेख किया गया है। ज्ञान-विज्ञान के अध्ययन-अध्यापन पर प्रकाश डाला गया है। शिक्षा स्वायत्त संस्थाओं द्वारा संचालित होनी चाहिए, उसे राजकीय प्रभाव से सर्वथा मुक्त रखा जाना चाहिए। यह तभी संभव है जब उसके लिए राजकीय अनुदान न लिया जाए। केवल दान तथा जनसहयोग से ही शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए। नभग क्योंकि राजपुत्र हैं अतः अपने राज्य भाग को लेकर वह गुरुकुल को दान कर देना

चाहते हैं। वह चाहते हैं कि इससे एक स्थायी निधि स्थापित कर दी जाए तथा उस राशि से गुरुकुल का संचालन किया जाए। इससे आचार्य तथा छात्र चिन्तामुक्त होकर पठन-पाठन तथा सेवा-कार्य में लगे रहेंगे। अध्यापन के साथ-साथ नभग एक मंत्रकार ऋषि के रूप में उदीयमान होकर यश अर्जित करने लगते हैं।

तृतीय सर्ग

नभग अयोध्या जाकर अपने वृद्ध माता-पिता से 'श्रद्धाश्रम' में मिलते हैं। अयोध्या के सिंहासन पर उनके ज्येष्ठ भ्राता महाराज इक्ष्वाकु आसीन हैं। वह माता-पिता को अपने आने का प्रयोजन बताते हैं। वानप्रस्थ में दीक्षित पिता अपनी असमर्थता व्यक्त करते हैं तथा इक्ष्वाकु से राज्य भाग माँगने का सुझाव देते हैं। राजा परम्परित वर्ण-व्यवस्था के पक्षधर हैं; उन्हें नभग का वर्ण परिवर्तन अच्छा नहीं लगता। वह तथा उनके अन्य भ्राता इसका विरोध करते हैं तथा क्षत्रिय और ब्राह्मण में ब्राह्मण की सीमाओं का निर्देश करते हैं। नभग इसका विरोध करते हैं। इक्ष्वाकु शिक्षा पर राज्य के निमंत्रण का समर्थन करते हैं। नभग की शिक्षा-विषयक नीति का वह विरोध करते हैं तथा नभग को अनमनीय देखकर सभा से बहिष्कृत कर देते हैं। नभग अपमानित होकर श्रद्धाश्रम में लौट आते हैं। माता-पिता को अपने अपूर्व प्रतिभाशाली कवि पुत्र की अकिंचनता से कष्ट होता है। वह उसे एक वर्ष तक एकान्तवास कर अन्तःकरण की शुद्धि तथा काव्य-साधना करने का परामर्श देते हैं। नभग इस परामर्श का पालन करते हैं। इस बीच उनकी काव्य-साधना और अधिक परिपक्व हो जाती है।

एक दिन पिता अपने कवि पुत्र को आंगिरस गोत्री कवियों के सारस्वत-यज्ञ में जाकर प्रतिभा प्रदर्शन की प्रेरणा देते हैं। आंगिरस गोत्री कवियों ने नूतन मंत्रकार ऋषियों के प्रोत्साहन के लिए एक न्यास की स्थापना की है। वह प्रतिवर्ष उस राशि से काव्य-स्पर्धा आयोजित कर श्रेष्ठ कवि का चयन करते हैं तथा उसे सम्मानित करते हैं। नभग स्पर्धा में भाग लेने का निश्चय करते हैं।

चतुर्थ सर्ग

वरुण आंगिरस की यज्ञशाला के बाहर काव्य सभा का आयोजन होता है। प्राचीन तथा नवीन मंत्रकार ऋषि भाग लेने के लिए एकत्र होते हैं। च्यवन, मेधातिथि, अत्रि, गौतम, अभिवर्त, प्रचेता, शिशु, सुकक्ष, संवर्त ऐसे ही कवि हैं। काक्षीवती घोषा कवयित्री है। सभा की अध्यक्षता के लिए घोषाा का नाम प्रस्तावित होता है। उसके शरीर पर श्वेत दाग देखकर तथा नारी को अध्यक्ष पद दिए जाने से खिन्न होकर एक जरठ ऋषि उसका विरोध करता है। वरुण अंगिरा नर-नारी की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए ऋषिका घोषा के वेदाधिकार का समर्थन करते हैं तथा नारी को वेदाध्ययन तथा

मंत्रसृजन के दिए गए अधिकार का अनुमोदन करते हैं। घोषा अपने अध्यक्षीय भाषण में इन सब बिन्दुओं का उद्‌घाटन करती है। इसी सभा में नभग अपने काव्यपाठ द्वारा सबका हृदय जीत लेते हैं तथा श्रेष्ठ कवि का पुरस्कार प्राप्त कर घर लौटते हैं। मनु इसी सर्ग में परंपरित न्याय विधान के पुनराकलन की प्रस्तावना भी करते हैं।

पंचम सर्ग

मार्ग में संध्या के समय नभग के सामने रुद्रदेव प्रकट होकर उस यज्ञ-शेष धन पर अपना अधिकार जताते हैं। नभग उस धन को अपना बताते हैं। इस पर विवाद खड़ा हो जाता है। रुद्रदेव इस विवाद की मध्यस्थता के लिए मनु का नाम प्रस्तावित करते हैं। नभग मनुं पिता से जाकर इसका निर्णय माँगते हैं। मनु सत्यनिष्ठ हैं। वह बिना विचलित हुए उस धन पर रुद्रदेव का अधिकार बताते हैं। नभग पिता का निर्णय रुद्रदेव को बताते हैं। पिता-पुत्र की सत्यवादिता से प्रसन्न होकर रुद्र वह सारा धन नभग को प्रदान करते हैं। नभग गुरुकुल आकर उस धन से 'वत्सल निधि' की स्थापना करते हैं। वह त्याग के अपूर्व आदर्श हैं। गुरुकुल को आत्मनिर्भर बनाकर नभग संन्यास लेते हैं। नभग के उत्तराधिकार का प्रश्न उठ खड़ा होता है। वह एक द्विजेतर योग्य स्नातक को गुरुकुल का आचार्य घोषित करते हैं। कट्टरतावादी द्विज इसका विरोध करते हैं, पर अन्त में नभग के निश्चय के सामने सिर झुका देते हैं।

इसी समय अपनी भूल सुधारने के लिए नभग के भाई धृष्ट वहाँ आते हैं तथा नभग के विचारों का समर्थन करते हुए शेष जीवन एक ब्राह्मण के रूप में गुरुकुल में ही बिताने की प्रार्थना करते हैं। उन्हें कर्मणा ब्राह्मणत्व मिलता है तथा वही नभग के प्रस्ताव का समर्थन कर द्विजेतर स्नातक को आचार्य पद पर प्रतिष्ठित करने के लिए तिलक करते हैं। राजा धृष्ट द्वारा मिली यह स्वीकृति नभग की जन-विचारधारा की विजय है।

नभग उस शिष्य स्नातक को अपना पुत्र घोषित कर नाभाग नाम देते हैं तथा स्वयं हिमालय के उच्च शिखरों की ओर तपस्या हेतु प्रस्थान करते हैं। इस प्रकार कृतकार्य नभग विद्या सबकी है और वेद-वेदांग पर सभी का समान अधिकार है, के सिद्धांत को व्यावहारिक रूप प्रदान करते हैं।

प्रस्तुत काव्य के तीन प्रमुख विचार-बिन्दु हैं—(1) वर्ण-व्यवस्था जन्मना नहीं, गुण-कर्मणा होनी चाहिए (2) वेदाध्ययन एवं सर्वांग शिक्षा का अधिकार लिंग, जाति, धर्म, रंग, भाषा, देशकाल तथा छोटे-बड़े के भेद से रहित मनुष्यमात्र को मिलना चाहिए तथा (3) शिक्षा को राजकीय प्रभाव से मुक्त रखा जाना चाहिए।

अभिधान

अंजन वपु	=	काजल की तरह साँवला शरीर
अग्नि सोम	=	आग और चन्द्रमा [वैदिक सृष्टि सिद्धान्त के अनुसार ब्रह्मांड की रचना अग्नि और सोम से हुई है। इनमें एक नारी का प्रतीक है और दूसरा पुरुष का प्रतीक है।]
अग्न्याधान	=	अग्नि को स्थापित करना
अचल	=	पर्वत
अजगव	=	शिव धनुष
अजापुत्र	=	बकरा
अजित	=	जो कभी जीता नहीं जा सका
अजूबा	=	आश्चर्य
अत्रि	=	आत्रेय परिवार के मंत्रकार ऋषि
अनुबन्ध	=	शर्तनामा
अन्तर्पट	=	पेटीकोट, अन्दर का वस्त्र
अपरादित्य	=	दूसरा सूर्य
अभिगर्त	=	ऋग्वेद के मंत्रकार ऋषि [इनके मंत्र ऋग्वेद में आंगिरस परिवार के ऋषि के रूप में संगृहीत हैं।]
अभिधान	=	नाम
अमरपति	=	इन्द्र
अरिहन्ता	=	शत्रु को मार देने वाला
अर्चि	=	अग्नि की लपट
अर्धनारीश्वर	=	आधे में शिव तथा आधे में पार्वती का सम्मिलित विग्रह [शिवपुराण के अनुसार शिव ने अर्धनारीश्वर रूप में दर्शन देकर प्रजापति को सृष्टि रचना की प्रेरणा दी।]
अलिन्द	=	चबूतरा
अलीक	=	झूठा
अवदात	=	उज्ज्वल
अशन	=	खाना
अश्विनी कुमार	=	देवताओं के वैद्य [घोषा का श्वित्र रोग इन्होंने दूर किया, च्यवन ऋषि की अंधता दूर की। घोषा ने इनकी प्रशंसा में सूक्त लिखे हैं। श्रीमद्‌भागवत पुराण के नवम स्कंध में इनकी कथा है। च्यवन मंत्रकार मनुष्य राजा शर्याति के जामाता थे।]
अश्वी युगल	=	दो घोड़े
असपत्न	=	विरोधी
अहोरात्र	=	दिन-रात
आकर	=	खान
आकाश कुसुम	=	सूर्य [आकाश का फूल]

आख्या = टिप्पणी
आज्य = घृत
आपीड़ = मुकुट
आसन्दी = चौकी
इक्षु = गन्ना
इड़ा = मनु की पुत्री [मनु के अनुरोध पर सुद्युम्न नामक पुत्र के रूप में परिणत हुई, किन्तु अम्बिका वन में प्रवेश करने पर फिर स्त्री रूप में परिवर्तित हो गई। ऋग्वेद में तथा शतपथ ब्राह्मण में उसे मानव धर्म की शिक्षिका कहा गया है। वह यज्ञ की खीर तथा वाग्देवी के रूप में भी वैदिक काल में पूजी गई।]
इति = समाप्ति
उद्गीथ = साम पाठ
उपवीत = जनेऊ
ऊर्जस्वित = शक्तिशाली
ओक = समुद्र
ओदन = भात
ऋषिका = स्त्री ऋषि
कँलगी = मुकुट
कगारा = किनारा
कनक काल = सुनहरा समय, प्रभात काल
कनक हास = प्रकाश [सुनहरी हँसी]
कपर्दी = शिव का नाम
कपोल = गाल
करस्थ = हाथ में रखा हुआ
कराल = भयंकर
करुष = वैवस्वत मनु के पुत्र
कलम = धान का पौधा
कवि = मनु के पुत्र, जिन्होंने बचपन से ही वैराग्य धारण कर राजसुखों का परित्याग कर दिया।
कामजा = काम गोत्र में उत्पन्न, कामायनी
किरीट = मुकुट
कुन्तल = केश
कुन्ताप = भाला
कुन्दन = स्वर्ण
कुररी = एक पक्षी, जिसकी चीख बड़ी तीखी होती है। प्रायः अंधकार होने पर चीखती है।
कुलाँच = छलाँग
कुवलय = किसलय, कली
कोषागार = खजाना

कृष्णदर्शन = रुद्र का नाम [शिव पुराण में आया है।]
कृष्णशवा = रुद्र का नाम, ऋग्वेद के नाभानेदिष्ट के प्रसंग में उन्हें कृष्णशवा बताया गया है।
खगेन्द्र = पक्षियों का स्वामी गरुड़
खग्रास = ग्रहण [सूर्य अथवा चन्द्र ग्रहण]
खर = तीव्र
गणप = गणेश
गन्धमादन = हिमालय का शिखर
गरुत्मान = भारवाला अथवा गरुड़
गह्वर = गड्ढा
गिरीश = शिव, हिमालय
गुल्म = झाड़ी
गोधूम = गेहूँ
गोमय = गोबर
गौतम = गौतम परिवार के मंत्रकार ऋषि
ग्रीष्मान्तक = गर्मी के अन्त का अथवा वर्षा के आगमन का
घोषा = आँगिरस परिवार की एक ऋषिका [इनके मंत्र ऋग्वेद में संगृहीत हैं।]
चक्रवाक = चकवा पक्षी
चषक = प्याला
च्यवन = भार्गव परिवार के मंत्रकार ऋषि
छान्दस काव्य = वैदिक काव्य
जपा कुसुम = गुड़हल के लाल फूल
जम्बूनद = स्वर्ण
जावक = महावर
झंझा = आँधी
झंझावात = आँधी
तचना = सुलगना, तपना
तड़ाग = सरोवर
तमारि = सूर्य
तमिस्रा = रात्रि
तरंग = लहर
तस्कर पति = चोरों के स्वामी [रुद्राध्याय में शिव के लिए 'तस्कराणां' पतये नमो नमः' कहा गया है।]
ताम्रचूड़ = मुर्गा
ताम्रवर्णी = ताम्बे के रंग की
तिमिर = अंधकार
तुलसी कोट = तुलसी चौरा
त्रिस्वर्ग = अन्तरिक्ष, नभ, द्युलोक
दाय = उत्तराधिकार, देने योग्य हिस्सा

दिनमणि	=	सूर्य
दिवगामी	=	स्वर्ग में चलनेवाला
दिष्ट	=	वैवस्वत मनु के पुत्र
दुकूल	=	चादर, उत्तरीय
दोषा	=	रात्रि
द्विज	=	ब्राह्मण, पक्षी
धराधिप	=	राजा
धराधीश	=	राजा
धुर्जटी	=	शिव
धूम के पट	=	धुएँ के फलक अथवा धुएँ के वस्त्र
धृष्ट	=	वैवस्वत मनु के पुत्र
ध्वान्त	=	अंधकार
नभग	=	वैवस्वत मनु के पुत्र
नभयान	=	आकाश का वाहन, सूर्य
नभ्य	=	नाभि या केन्द्र में रहनेवाले
नरिष्यन्त	=	वैवस्वत मनु के पुत्र
नाभानेदिष्ट	=	ऋग्वेद में वर्णित ऋषि, नभग इनका दूसरा नाम है।
निकष	=	कसौटी
निकेत	=	घर, भण्डार
निमि	=	इक्ष्वाकु के सौ पुत्रों में से एक [मिथिला राज्य की स्थापना इन्होंने ही की। वशिष्ठ से मतभेद होने के कारण इन्हें देह त्याग करनी पड़ी। ये योगशास्त्र और उपनिषदों के मर्मज्ञ विद्वान थे। इन्हीं की यज्ञशाला में नव योगेश्वरों का संवाद सम्पन्न हुआ। विदेह राजाओं की परम्परा इन्हीं से प्रारम्भ हुई।]
नियति	=	भाग्य
निरुद्ध	=	रोकना
निरुपाय	=	उपायहीन
निरोग	=	नीरोग, रोगमुक्त, स्वस्थ
निषंग	=	तरकश
निष्ककंठ	=	स्वर्ण सिक्कों की माला
नीलोत्पल	=	नीले रंग का कमल
नैष्ठिक ब्रह्मचर्य	=	पूर्ण ब्रह्मचर्य [तन, मन तथा वाणी से पूर्ण रक्षित]
नैसर्गिक निधि	=	प्राकृतिक खजाना
नृग	=	वैवस्वत मनु के पुत्र
न्यास	=	ट्रस्ट
पतंग	=	उड़नेवाली कागज निर्मित पतंग अथवा सूर्य
परजीवी	=	दूसरे पर निर्भर
परावाक्	=	सूक्ष्म वाणी, दैवी वाणी
पर्जन्य	=	बादल

पलाश	=	ढाक
पिनाकी	=	शिव
पुरन्दर	=	इन्द्र
प्रकर	=	समूह
प्रचेता	=	ऋग्वेद के मंत्रकार ऋषि [इनके मंत्र ऋग्वेद में आंगिरस परिवार के ऋषि के रूप में संगृहीत हैं।]
प्रजाकाम	=	प्रजा की कामनावाला
प्रपात	=	झरना
प्रभंजक	=	तोड़नेवाला
प्रभंजन	=	आँधी
प्रतीची	=	पश्चिम दिशा
प्रवाल	=	मूँगा
प्रसून	=	फूल
प्राणायान	=	प्राण और अपान वायु
प्रीणन	=	प्रसन्नता
पृषध्र	=	मनु के पुत्र [ये वशिष्ठ की गायों की रखवाली का काम करते थे। एक दिन रात्रि को एक व्याघ्र गोशाला में घुस आया। पृषध्र ने गायों की चीख सुनी। वह खड्ग लेकर गोशाला में घुसे। वर्षा और अंधकार की रात में ठीक से न दिखाई पड़ने के कारण पृषध्र के खड्ग से व्याघ्र का केवल कान भर कटा किन्तु गाय मारी गई। इस पर वशिष्ठ जी ने इन्हें शूद्र होने का शाप दे दिया।— श्रीमद्भागवत के नवमस्कन्ध के द्वितीय अध्याय में यह कथा है।]
पुनान	=	पवित्र [छनने के बाद सोमरस को पुनान कहा जाता है।]
बटुक	=	ब्रह्मचारी
बहुमान्य	=	बहुत सम्मानित
भाटा	=	समुद्र के ज्वार का उतार
भाव पुरस्सर	=	भाव संयुक्त
भिषग	=	आथर्वण परिवार के मंत्रकार ऋषि।
भीम	=	भयंकर, शिव की अष्टमूर्तियों में से एक मूर्ति।
भूप	=	राजा
मजीठ	=	मंजिष्ठा [एक प्रकार की लता। इसकी जड़ और डंठलों से लाल रंग निकलता है।]
मयंक	=	चन्द्रमा
मरकत	=	पन्ना
मराल	=	हंस
मरीचिमाली	=	सूर्य
मलय	=	चन्दन
मस्तूल	=	बड़ी नावों आदि के बीच का वह बड़ा शहतीर जिसमें पाल बाँधते हैं।

महर्घ	=	मूल्यवान
महामेध	=	बड़ा यज्ञ
मारुत	=	हवा
मित्रावरुण	=	वैदिक देवता [ऋग्वेद में इनके 31 सूक्त हैं।]
मिलिन्द	=	भ्रमर
मुण्डेरी	=	छज्जे का निचलाभाग
मेचक	=	साँवला
मेधातिथि	=	काण्व परिवार में मंत्रकार ऋषि
मृगेन्द्र	=	सिंह
मृणाल	=	कमलनाल
यमान्तक	=	यम का भी अन्त कर देनेवाली, महाप्रलयकारी
याजक	=	यज्ञकर्ता
यामिनी	=	रात्रि
युगपत्	=	इकठा
रत्नाकर	=	समुद्र
राक्ति सूत्र	=	ऋग्वेद के दशम मण्डल के दसवें अध्याय का 127वाँ 'ऊँ रात्री व्यख्यदायती पुरुत्रा देव्यक्षभिः' शीर्षक सूक्त।
रैन	=	रजनी, रात्रि
लूक	=	मशाल
लोहिताक्ष	=	लाल-लाल नेत्र वाला, रक्तरंजित
वत्स	=	पुत्र
वय	=	उम्र
वरुण अंगिरा	=	ऋग्वेद के मंत्रकार ऋषि, ऋग्वेद के पंचम मंडल तथा दशम मंडल में इनके सूक्त हैं।
वल्लकी	=	वीणा [सामगान के लिए दोनों हाथों की अँगुलियों पर स्वरों की स्थापना।]
वर्त्म	=	कवच
वलयित	=	कंगनाकार, घिरा हुआ
वह्नि	=	अग्नि
वापिका	=	बावड़ी
वामन	=	छोटा [विष्णु ने राजा बलि को छलने के लिए वामन रूप (52 अंगुल) धारण किया था। श्रीमद्‌भागवत, वामन तथा विष्णु पुराण में कथा मिलती है।]
वारुणी	=	पश्चिम दिशा की स्वामिनी देवी
विकुक्षि	=	इक्ष्वाकु का ज्येष्ठ पुत्र [इसी से अयोध्या के सूर्य वंश का विस्तार हुआ।] देवासुर संग्राम में इन्द्र के कंधे पर बैठकर युद्ध करने के कारण 'इन्द्रवाह' कहलाया। पुर जीतने के कारण इसे 'पुरंजय' भी कहते हैं।
विक्रान्त	=	अपराजेय

विजन	=	एकान्त, वन
विज्ञ	=	ज्ञाता
विटप	=	वृक्ष
वितान	=	चँदोवा
विद्युत का घर	=	बादल
विनंठ	=	नष्ट होना
विप्लव	=	क्रान्ति
विभव	=	धन
विभा	=	चाँदनी
विभ्राट	=	विशाल
विराट	=	वैवस्वत मनु के पुत्र
विवस्वान	=	सूर्यवंश के पूर्व पुरुष
विहान	=	प्रातःकाल
वेदांग	=	वेद के छह अंग [शिक्षा, कल्प, ज्योतिष, छन्द, व्याकरण, निरुक्त]
वैश्वानर	=	अग्नि
व्याल	=	सर्प
व्याली	=	सर्पिणी
व्युप्तकेश	=	सिर मुँड़ाए हुए शिव का नाम
वृकी	=	मादा भेड़िया
शकट	=	गाड़ी
शक्ति	=	प्रतिभा
शमीक	=	अग्नि गर्भित, अग्नि
शम्पा	=	बिजली
शाटिका	=	साड़ी
शाण	=	खराद, रेती
शायक	=	बाण
शार्दूल	=	सिंह
शान्तिमंत्र	=	'ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः...' मंत्र [वैदिक परम्परा में सभा की समाप्ति पर पढ़ा जाता था।]
शिपि विष्ट	=	पशुपति, यज्ञरूप शिव [यजुर्वेदोक्त शिव का नाम]
शिशु	=	आंगिरस परिवार के मंत्रकार ऋषि [इनके मंत्र ऋग्वेद में संगृहीत हैं।]
शुल्क क्रीत	=	धन से खरीदे हुए
शृंग	=	सींगी, शिव के हाथ का बाजा
शृंगाटक	=	सिंघाड़े
शृगाल	=	गीदड़
श्येन	=	बाज नामक पक्षी
श्रद्धाश्रम	=	श्रद्धा ऋषि का आश्रम। [कामायनी का एक नाम श्रद्धा भी है।]
श्वसन	=	साँस लेना

स्वसा = बहन

श्वित्र = त्वचा का एक रोग, सफेद चिह्न, सफेद दाग

संवर्ग = समूह

संवर्त = आंगिरस परिवार के मंत्रकार ऋषि [इनके मंत्र ऋग्वेद में संगृहीत हैं।]

सत्वर = शीघ्र

सद्यःस्नाता = तुरन्त नहाई हुई

सपत्न = अनुकूल

सभानेत्री = सभा की अध्यक्षा

समावर्तन संस्कार = शिक्षा समाप्ति पर किया जानेवाला संस्कार

समीरण = हवा

सम्बल = सहारा

सलिल = जल

सविता = सूर्य

सहस्थान = एक साथ बैठने का स्थान

साम्ब = अम्बा पार्वती के साथ

सुकक्ष = आंगिरस परिवार के मंत्रकार ऋषि [इनके मंत्र ऋग्वेद में संगृहीत हैं।]



सुपर्ण = गरुड

सृजनेच्छा = निर्माण की इच्छा।

सोपान = सीढ़ी

सोम = चन्द्रमा, सोमरस

स्थाणु = शिव का नाम

स्फीत = फैला हुआ, विशाल

स्फुलिंग = चिनगारी

स्मरान्तक = कामदेव को नष्ट करनेवाले

स्मिति = मुस्कान

स्रुक = आहुति देनेवाली लकड़ी की चम्मच

स्वत्व = अधिकार

स्वयंवश्य = स्वतन्त्र

स्वरधर = कवि

हंस = हंस पक्षी तथा आत्मा

हरिकेश = शिव का नाम, हरितवर्णी केशवाले

हारिल = एक पक्षी विशेष, चोंच में तिनका दबाकर निश्चिन्त स्थान पर घोंसला बनाने के लिए आकाश में उड़ता है तथा थककर पंख शिथिल होने पर घायल गिर पड़ता है।

हेम भुजा = हिरण्यबाहु शिव, रुद्राध्याय में उन्हें हिरण्य बाहवे नमः कहा गया है।

होता = यज्ञ करनेवाला

●●●





डॉ. विष्णुदत्त राकेश

डॉ. विष्णुदत्त राकेश भारतीय साहित्य तथा पुराविधाओं के पंडित हैं। जोधपुर विश्वविद्यालय ने पी-एच.डी. तथा विक्रमविश्वविद्यालय उज्जैन ने डी.लिट. की उपाधि प्रदान की है। काशी में प्राचीन शास्त्रों का परम्परागत अध्ययन किया है। सम्प्रति गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार में हिन्दी के आचार्य हैं। डॉ. राकेश हिन्दी विभागाध्यक्ष तथा संकायाध्यक्ष के रूप में कार्य कर चुके हैं। चारों वेदों के हिन्दी काव्यान्तरण का कार्य कर रहे हैं।

प्रमुख प्रकाशित कृतियाँ

श्रुतिपर्णा (काव्य) • *देवरात* (मध्यप्रदेश सरकार के भवानी प्रसाद मिश्र अखिल भारतीय काव्य पुरस्कार से सम्मानित प्रबन्ध काव्य) • *पर्णगंधा* (काव्य) • *उत्तरभारत के निर्गुण पंथ साहित्य का इतिहास* • *आचार्य कुलपति मिश्र* • *रीतिकाल के ध्वनिवादी हिन्दी आचार्यों का तुलनात्मक अध्ययन* • *पंत का सत्यकाम* • *आधुनिक हिन्दी लेखन की ऊर्जा* • *आचार्य श्रीचन्द्र : सिद्धान्त, साधना और साहित्य* • *आचार्य किशोरीदास वाजपेयी और हिन्दी शब्दशास्त्र* (सम्पादित) • *वैदिक साहित्य, संस्कृति और समाजदर्शन* (सम्पादित) • *भारतीय अस्मिता और राष्ट्रीय चेतना के आधार आद्यशंकराचार्य* (सम्पादित) • *दीक्षालोक* (सम्पादित) • *तुलनात्मक साहित्यशास्त्र* • *श्रीमद्भागवत प्रवचन* • *नभग* (काव्य) • *स्वामी श्रद्धानन्द के सम्पादकीय लेख* (सम्पादित)





राधाकृष्ण